RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 57 अंक : 05-06 प्रकाशन तिथि : 25 मई कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 जून, 2020

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

अकबर घोर अँधार, ऊँघाणा हिन्दू अवर।
जागै जगताधार, पोहरे राण प्रतापसी।।

HITKARI & SWARAJ

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान

फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़

आजाद सिंह राठौड़

सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी & स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड

हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति

4 मई-जून, 2020

वर्ष : 56 अंक : 5-6

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क – एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय – सूची

समाचार संक्षेप		04
चलता रहे मेरा संघ	श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	07
पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	श्री चैनसिंह बैठवास	09
मेरी साधना	प्रो. रूपसिंह लिम्बड़ी	12
आईये शंबूक का वध करें	श्री कृपाकांक्षी	16
माया-दर्शन		17
शाहबाज खाँ की मेवाड़ पर चढ़ाई	डॉ. राजशेखर व्यास	18
महत्त्वपूर्ण कल्याणकारी बातें	श्री जदयाल जी गोयन्दका	21
हमें त्याग फल उगाने दो!	श्री संग्रामसिंह सचियापुरा	26
विचार-सरिता (चतुर्थपञ्चाशत् लहरी)	श्री विचारक	27
कोटड़े का प्राचीन ऐतिहासिक दुर्ग	श्री बाबूसिंह कोटड़ा	29
चित्रकथा-'लोकदेवता बाबा रामदेव जी'	श्री ब्रजराजसिंह खरेड़ा	31
अपनी बात		33

समाचार संक्षेप

संयुक्त अंक :

कोरोना के कारण 25 मार्च से लोकडाउन लागू हुआ। जयपुर में परकोटे के अन्दर बसे हुए शहर में अधिक संक्रमण होने के कारण उसी दिन से कर्फ्यू लागू हो गया। वह प्रेस जहाँ संघशक्ति छपती है, परकोटे के अन्दर है इसलिए संघशक्ति का अप्रेल माह का अंक प्रेस में ही अटका पड़ा रहा। थोड़ी छूट मिलने के बाद जून में संघशक्ति पत्रिका मिल पाई अत: अप्रेल माह का अंक 9 जून को डाक में प्रेषित किया गया।

प्रेस के कर्फ्यू क्षेत्र में होने के कारण, न सम्पर्क हो सकता था और न आवागमन। इसलिए मई व जून माह के अंक के प्रकाशन का समय भी निकल गया। दूर संचार मंत्रालय भारत सरकार के डाक विभाग की एडवाइजरी के आधार पर अब मई व जून माह का संयुक्त अंक निकाल कर कुछ देरी से प्रेषित किया जा रहा है। संयुक्त अंक निकालने से ग्राहकों को एक अंक कम न मिले, इसके लिये संघप्रमुख साहब के निर्देशानुसार चंदा समाप्ति के बाद एक अतिरिक्त अंक ग्राहकों को भेजा जाने का निर्णय किया है।

कोरोना में संघ कार्य :

मई माह में श्री क्षत्रिय युवक संघ का एक ग्यारह दिवसीय ग्रीष्मकालीन शिक्षण शिविर बालकों के लिये तथा एक सात दिवसीय शिक्षण शिविर बालिकाओं के लिये गुजरात में क्रमश: अहमदाबाद के निकट पिराणा में तथा साणंद तहसील के ग्राम काणेटी में होना निश्चित था। परन्तु कोरोना महामारी में लगाये गये लोकडाउन के कारण ये शिविर स्थगित किए गये।

कोरोना महामारी का अंत अभी निकट में दिखाई नहीं देता और एक बार नियंत्रण में आ भी गया तो भी लम्बे समय तक परस्पर भौतिक दूरियाँ बनाये रखने की आवश्यकता तो रहेगी। इसलिए अभी निकट समय में शिविरों का आयोजन तो नहीं हो सकेगा, परन्तु संघ शिक्षण चलता रहे, इसकी व्यवस्था तो करनी होगी। दूर संचार के क्षेत्र में विकसित विज्ञान के माध्यम से हम हजारों मील दूर बैठे भी परस्पर विचार-विमर्श कर सकते हैं। इस माध्यम से परस्पर निश्चित कर शाखा लगा सकते हैं। इसका प्रयोग इस लोकडाउन की अवधि में कुछ शाखाओं ने किया है। यू ट्यूब, फेस बुक के माध्यम से जुड़कर संघ की बात अनेक लोगों तक पहुँचा सकते हैं। महापुरुषों की जयन्तियाँ मनाई जा सकती हैं। ऐसे कार्यक्रम समारोह का रूप ले लेते हैं।

इन सुविधाओं का उपयोग करते हुए, लोकडाउन में लगाये प्रतिबंधों का पालन करते हुए, संघ चर्चा होती रहे इसके लिये संघ साहित्य को समझने का प्रयास हो, ऐसा सुझाव उभरा। और निश्चय किया गया कि एक दिन 'साधक की समस्याएँ' पुस्तक और एक दिन 'गीता और समाज सेवा' पुस्तक के प्रकरणों को समझने हेतु कार्यक्रम हो। चर्चा प्रारम्भ की गई जो रोज चल रही है और निश्चित समय पर सभी एक साथ जुड़कर सम्मिलित होते हैं।

लोकडाउन अवधि में प्रारम्भ से ही संघप्रमुखश्री के निर्देशानुसार संघ साहित्य का पठन, चिन्तन, यज्ञ आदि तो स्वयंसेवकों द्वारा प्रारम्भ कर ही दिया गया था, कुछ स्थानों पर घरेलू शाखाएँ भी प्रारम्भ हो गई जिसमें घर के सभी सदस्य सम्मिलित होते हैं। अब तो अनलोक प्रारम्भ हुआ है, काफी छूट मिली है पर आवश्यक सावधानियों का सरकार के निर्देशों का पालन करते हुए अपने आपको महामारी के संक्रमण से बचाएँ और अपने कारण अन्य को खतरे में न डलने दें और अपने कार्य में तत्परता से जुट जाएँ, यही करना होगा।

कोरोना (कोविड-19) वैश्विक आपदा है जिससे पूरा मानव समाज पीड़ित है। हमारे पूर्वजों ने तो न जाने कितनी आपदाएँ देखी हैं पर उनका उत्साह कभी कम नहीं हुआ। हमें भी इस आपदा से भी लड़ना है और हमारे संघ पथ पर कर्मरत रहते हुए अपना दायित्व निभाना है। यह

हमारे लिये चुनौती है और हर चुनौती पर विजय पाना ऊर्ध्वगामी यात्रा के लिये आवश्यक है, अत: हमें तो आगे बढना है।

महापुरुषों की जयन्ती :

महाराणा प्रताप की जयन्ती ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया को मनाते रहे हैं। अक्सर यह तिथि हमारे ग्रीष्मकालीन शिविर के समय आती है अत: शिविर में ही मनाई जाती है। इस बार भी यह तिथि 25 मई को थी जो गुजरात में प्रस्तावित शिविर में ही आ रही थी अत: वहीं जयन्ती मनाने का निश्चय था। शिविर स्थगित करना पड़ा पर विकसित विज्ञान को माध्यम बनाकर जयन्ती सुरेन्द्रनगर (गुजरात) से मनाई गई जिसमें अपने-अपने स्थान पर सभी सम्मिलित हुए।

गुजरात में समाज को समयानुकूल राह पर अग्रसर करने में माननीय हरभमजीराज, मनुभा बापू चेर, हरिसिंहजी बापू गढुला और भाडवा दरबार चन्द्रसिंहजी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। महाराणा प्रताप के साथ इन चारों महापुरुषों की जयन्ती भी 25 मई को मनाई गई। कार्यक्रम से जुड़कर अपने-अपने स्थान पर रहते हुए जयन्ती का आनन्द लिया और समाज के महापुरुषों को भावाञ्जलि अर्पित की।

विज्ञान के माध्यम से दूर बैठे सम्मिलित होने वाले ऐसे कार्यक्रमों में क्या परेशानियाँ आती हैं, यह पता न होने से प्रयोग करने का निश्चय किया और आंग्ल पचांग के अनुसार महाराणा प्रताप की जयन्ती 9 मई को है, उस दिन जयन्ती मनाकर प्रयोग किया जो सफल रहा। उस प्रयोग से प्रेरित होकर संघ साहित्य पर चर्चा प्रारम्भ की गई और सुरेन्द्रनगर में जयन्ती मनाई गई।

महामारी :

चीन के वुहान शहर से निकली कोरोना (कोविड-19) महामारी ने पूरे संसार में पैर फैला दिए हैं। यह ऐसा वायरस है कि इससे संक्रमित व्यक्ति के सम्पर्क में आने वाला व्यक्ति भी संक्रमित हो जाता है। संक्रमित व्यक्ति में संक्रमण प्रकट होने में भी कई दिन लग जाते हैं, तब तक वह जिन-जिन के सम्पर्क में आता है, उनके संक्रमित होने की पूरी सम्भावना रहती है और इस तरह तीव्रता से महामारी बढती रहती है। नया वायरस होने के कारण अब तक न तो इसकी दवा है और न ही कोई वैक्सिन। ऐसे में संक्रमित व्यक्ति को बचाना कितना मुश्किल है, विशेषकर उनको जो पूर्व में किसी अन्य बिमारी से पीड़ित हैं।

संक्रमण की जाँच तुरन्त होनी चाहिए पर कोई देश इस बड़े स्तर तक जाँच उपकरणों से समृद्ध नहीं था। धीरे-धीरे जाँच उपकरण बढे पर तब तक महामारी विकरालता की ओर अग्रसर हो गई। चीन ने बात छिपाई या उसने वायरस फैलाया, यह सब सियासी झगड़े चलते रहेंगे। परन्तु वुहान शहर की खबरें बाहर आई और चीन के बाद दूसरे देशों में संक्रमण बढते देखा तो पूरा विश्व भयभीत हो गया।

भारत ने खतरे को समझा और तैयारियाँ प्रारम्भ की। जांच उपकरण सीमित थे, संक्रमण से बचाने के लिये पहने जाने वाले किट, मास्क आदि भी नहीं के बराबर थे। इन उपकरणों को बढाने के चहुंमुखी प्रयास प्रारम्भ हुए। खतरे से जूझने के लिये पूरा राष्ट्र एक नजर आए, यह भाव जाग्रत करना आवश्यक था। अत: 22 मार्च को सरकार ने जनता कर्फ्यू, अर्थात् स्वेच्छा से कर्फ्यू का आह्वान किया। दिन भर घर में रहना, घर से बाहर नहीं निकलना और शाम को तालियाँ बजाकर इस महामारी में जूझने वाले वारियर्स का सम्मान प्रकट करना। जनता ने पूरा पालन किया और सभी ने राष्ट्रीय एकता का एक मूर्त रूप देखा। ऐसा ही दृश्य 5 अप्रेल को घर की बत्ती बुझाकर रोशनी करने वाला था।

25 मार्च से लोकडाउन प्रारम्भ हुआ जो बढते-बढते 31 मई तक हो गया। कुछ गैर जिम्मेदार लोग संक्रमित होकर भी छिपते रहे और अन्य लोगों के सम्पर्क में आकर उनको भी संक्रमित करते रहे। कोरोना बढता गया-जाँच भी बढती गई। लम्बा समय होने से कुछ ढील भी बीच में दी गई। अमेरिका, ब्रिटेन, ब्राजील, इटली, फ्रांस, रूस आदि अनेक विकसित देशों में स्थिति हमारे से

कहीं ज्यादा खराब है। भारत ने जाँच सुविधा बढाई है, आवश्यक तैयारियों में विकास किया है। अब प्रवासी मजदूरों के कारण गाँव में भी फैलाव प्रारम्भ हो गया जो खतरनाक साबित हो सकता है। देश और प्रदेशों की आर्थिक स्थिति भी बदतर हो रही है अत: अनेक प्रकार की ढील भी दी जानी आवश्यक है। पर बढती महामारी के बावजूद राजनैतिक सियासत अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है। लोक काल के ग्रास बनते जा रहे हैं और राजनेता अपने मतों की गिनती बढाने में लगे हैं। नेताओं का यह चरित्र दुर्भाग्यपूर्ण है। अब अनलोक प्रारम्भ हुआ है। डाक्टरों के अनुसार पूरी संभावना है कि संक्रमण बढेगा पर अब यह हमारा स्वयं का दायित्व है कि सावधानियाँ रखें, अपने को बचायें और अपना काम जोर-शोर से करें।

एक चैनल ने संघप्रमुखश्री को कोरोना पर अपनी बात कहने को कहा तो संघप्रमुखश्री ने इन बिन्दुओं पर अपनी बात रखी- पूरा राष्ट्र एकजुट होकर इस महामारी से लड़े; कोरोना वारियर्स का साधुवाद करें; इससे प्राण गंवाने वाले नागरिकों की आत्माहेतु शान्ति प्रार्थना करें; गीता के उद्‌बोधन 'कर्मण्येवाधिकारस्ते.....' के अनुसार निष्काम कर्म निष्ठा बनाये रखें; कोई कुछ मांगे तो अवश्य दें; स्वयं कष्ट सहकर भी कुछ माँगें नहीं, यही तपस्या है; हमारी तपस्या ही हमारे राष्ट्र को सिरमौर बनाएगी।

राष्ट्र के प्रति हमारा चारित्रिक दायित्व

प्रजातंत्र का व्यक्तिनिष्ठ एक महान् दायित्व राष्ट्र के प्रति होता है जिसे हम अभी तक स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षों बाद भी सम्यक रूप से व्यवस्थित नहीं कर सके। वह दायित्व है, राष्ट्रीय चरित्र का आदर्श उत्कर्ष। हम अपने हृदय पर हाथ रखकर पूछें कि क्या हम राष्ट्र की सम्पत्ति की स्वसम्पत्तिवत रक्षा करते हैं? क्या हम राष्ट्रीय गौरव के अनुरूप देश में तथा विदेशों से व्यापार-व्यवहार करते हैं? क्या हम वर्णाश्रम-धर्म वाले इस धर्म प्राण देश में धर्मनीति के अनुसार चल रहे हैं? क्या हम कल्याण राज्य के अनुरूप अपने अधिकार एवं कर्तव्यों का ईमानदारी से निर्वाह कर रहे हैं? हमारा आज का आचरण अन्यत्र देशों के नैतिक आचरण से ऊँचा है? क्या हम अपने राष्ट्र के प्राचीन गौरव को सम्मुख रखकर छल, दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, झूठ, हिंसा-प्रतिहिंसा, बेईमानी आदि दुर्गुणों से बचे हैं और क्या हम राष्ट्र के गौरव एवं बल को गिराने वाले, उत्कोच, अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार, जमाखोरी, चोरबाजारी प्रभृति अनैतिक आचारों से बचे हुए एवं समाज को बचाए हुए हैं? यदि आपका हृदय कहता है कि नहीं तो सोचिये कि हम कहाँ जा रहे हैं? और यह हमारे राष्ट्र के चारित्रिक उत्थान का हेतु होगा या पतन का? आप यदि अपने देश को अपना राष्ट्र कहते हैं या मानते हैं तो आपका उत्तरदायित्व आपको राष्ट्रीय चारित्र्य की दिशा में सुतरां प्रवृत्त करा देगा पर फिर भी प्रश्न है कि क्या हम अपने राष्ट्रीय-चरित्र के उत्कर्ष के लिये इच्छुक, लालायित, प्रयासशील हैं? यदि हाँ, तो निर्दिष्ट पद्धति पर चलना होगा। राष्ट्र के प्रति अपना चारित्रिक दायित्व किंवा कर्तव्य पूर्णत: निभाइये।

❑

मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान को एक।
पालै पोसै सकल अंग, तुलसी सहित विवेक।।

चलता रहे मेरा संघ

{उच्च प्रशिक्षण शिविर गनोड़ा (बांसवाड़ा) में 25 मई, 2019 को संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी द्वारा शिविरार्थियों हेतु उद्बोधित प्रभात संदेश}

ज्ञान प्राप्त करने के लिये जिज्ञासा का होना आवश्यक माना गया है। जिज्ञासा का अर्थ ही है, जानने की इच्छा। जो हम जानना चाहते हैं, उसके लिये पहली आवश्यकता है कि हमारी इच्छा हो जानने की। लेकिन इतना ही पर्याप्त नहीं है। जहाँ से हम ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, चाहे वह कोई व्यक्ति हो, चाहे संगठन हो, उसके प्रति हमारा कैसा भाव है, यह भी महत्त्व रखता है। गीता में भगवान कृष्ण ने इसके लिये हमें संदेश दिया है- ***श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।*** इच्छा तो है पर हमें जिससे भी जानना है, ज्ञान प्राप्त करना है, उसके प्रति श्रद्धा भी होनी चाहिए। परिष्कृत बुद्धि, वह बुद्धि जो हमको सत् की ओर ले जाती है, वह श्रद्धा कहलाती है। इच्छा है, पर जिससे जानना है, उसके प्रति श्रद्धा भी होनी चाहिए। इच्छा है लेकिन यदि श्रद्धा नहीं है तो जो जानना चाहते हैं वह उपलब्ध नहीं होगा। गीता के अनुसार जिससे हम ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, उसके प्रति श्रद्धा हो। हम यहाँ क्षत्रिय युवक संघ में आए हैं, क्षत्रिय युवक संघ की बात को समझना चाहते हैं तो पहली आवश्यकता है श्रद्धा। श्रद्धा नहीं है तो काम नहीं चलेगा। श्रद्धा हो यह पहला शब्द है।

दूसरा शब्द है तत्पर। ज्ञान प्राप्त करने के लिये हम उद्यमशील, कर्मशील, क्रियाशील हैं अथवा नहीं। जानने के लिये तत्पर हैं या नहीं। अपने आपको जानने के लिये प्रस्तुत किया है अथवा नहीं। श्रद्धा तो है पर अपने आपको अभी खोला नहीं है, ग्रन्थियाँ पड़ी हुई हैं। ग्रन्थियों के रहते हुए खुलेंगे कैसे? तब ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता। उन ग्रन्थियों को खोलना हमारा ही काम है, हमारा ही दायित्व है। उनके खुलने से ही व्यक्ति तत्पर होकर प्राप्ति के लिये उद्यमशील होगा। ये ग्रन्थियाँ न तो क्षत्रिय युवक संघ खोल सकता, न कोई पुस्तक खोल सकती है, न कोई मार्गदर्शक खोल सकता। यह तो हमारा ही काम है।

तत्परता भी है, श्रद्धा भी है पर एक कमी रह गई। वह है-संयतेन्द्रिय। इन्द्रियों पर संयम हो, हमारा नियंत्रण हो। इन्द्रियों पर संयम नहीं होगा तो तत्परता भी भंग हो जाएगी। जैसे अभी मेरे सामने आप लोग बैठे हैं पर यदि मेरे सामने न देखकर इधर-उधर देखते हों तो जो कहा जा रहा है उसे सुनने की तत्परता भंग हो गई। आँख, कान, नाक, जिह्वा और हमारी चमड़ी ये इन्द्रियाँ हैं। इनके विषय अलग-अलग हैं। आँख का विषय है रूप। आँख रूप की तरफ विचलन करना चाहती है। वह उसी के प्रति तत्पर रहती है। कान हैं वे कहीं और मधुर वाणी सुनने को तत्पर हैं। तो ज्ञान प्राप्त करने की तत्परता रह नहीं पाएगी। हमारी श्रवण पिपासा बिखरी हुई है। हमारी जिह्वा के दो काम हैं- एक तो वाणी और दूसरा रस लेना। हम किससे रस ले रहे हैं, इस पर हमारा नियंत्रण नहीं। हम श्रद्धालु हैं, तत्परता भी है पर इन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं है। चमड़ी से हम स्पर्श करते हैं पर कौनसा स्पर्श हमें सुहाता है। प्रातःकाल चलने वाली ठण्डी-ठण्डी बयार चमड़ी को स्पर्श करती है, थोड़ा अच्छा लगता है और कई बार हम उसमें खो जाते हैं। श्रद्धा है, तत्परता है लेकिन इन्द्रियों का संयम नहीं है तो घटना नहीं घटेगी। ज्ञान का प्रवेश नहीं हो पायेगा। भगवान कृष्ण के अनुसार जिज्ञासा के अतिरिक्त ये तीनों श्रद्धा, तत्परता व इन्द्रियों पर संयम आवश्यक है। हम क्षत्रिय युवक संघ को जानना चाहते हैं तो जो ज्योति हमने देखी है, जो नाम हमने सुना है, वह बाहर से सुना है। ज्योति हमने आँखों से देखी है, उसको हम अपने अन्दर प्रवेश करने दें। बाहर जो घटित हो रहा है वह स्थायित्व प्रदान नहीं करेगा। हम देख रहे हैं, पाँच-पाँच, सात-सात, दस-दस शिविर कर रहे हैं जहाँ प्रशिक्षण हमने लिया लेकिन यह तो उच्च प्रशिक्षण शिविर है। क्षत्रिय युवक संघ का श्रेष्ठ ज्ञान इस शिविर में दिया जा रहा है। लेकिन ये तीनों

शर्त पूर्ण नहीं करते हैं तो जो क्षत्रिय युवक संघ हमें दे रहा है, वह हमें नहीं मिल रहा है। बरसात हो रही हो पर आपका घड़ा फूटा पड़ा है तो पानी नहीं भर सकता। जो प्रकाश आपको संघ में दिखाई दिया है, उसे अनुभूत नहीं बनाएँगे तो वह आपके लिये स्तम्भ नहीं बन सकता क्योंकि वह अन्दर प्रवेश नहीं कर सका।

जो ध्वनि सुनाई पड़ी है, जो पुकार सुनाई पड़ी है- त्रस्त प्राणी वेदना में करुण क्रन्दन कर रहे हैं-यह पुकार हमने सुनी है। जो संघ में हमने देखा है उस शक्ति को हम अपने अन्दर काम करने दें। यही उपाय है जो हमारी शिराओं में गूंज जाए, हमारे श्वास में उतर जाए। तब क्षत्रिय युवक संघ में आना सार्थक होता है। यहाँ शिविर में आना सार्थक होता है। वरना हम आते हैं, चले जाते हैं- पुनः वही आना व जाना। बंधने का दृढ संकल्प करते हैं पर अभी तक हमने क्षत्रिय युवक संघ के उद्देश्य से बांधा नहीं है अपने आप को। भटकने के तो दस द्वार पड़े हैं। माया के सारे द्वार खुले पड़े हैं। वेदों में कहा है कि सत्य और ज्ञान हिरण्यमय पात्र से ढका पड़ा है। हिरण्यमय पात्र जो चमकता है, उससे प्रभावित होते हैं और उसी प्रतीति को ही हम सत्य मानकर बैठ जाते हैं। इस बात को पू. तनसिंहजी ने 'साधना पथ' की भूमिका में समझाने का प्रयास किया है। उसको समझने का प्रयत्न करें। हमने प्रारम्भ में ही यह बात सुनी और कही कि श्री क्षत्रिय युवक संघ एक ईश्वरीय मार्ग है। इस बात की अभिव्यक्ति और व्यवहारिकता हमारे अन्दर देखने का अभ्यास कैसे कराया जा सके? श्रद्धा का विश्वास है, तत्परता का विश्वास है, इन्द्रियों का संयम करने का विश्वास है तो यह ईश्वरीय कार्य ही है। पू. तनसिंहजी ने कहा है कि उद्देश्य जितना महान होगा, उस तक पहुँचने की साधना भी बड़ी कष्टदायक होगी। आपके रहने के लिये रात में सोने के लिये यहाँ कमरे हैं। फिर भी कहते हैं बाहर दूर जाकर सोवो। इसका आशय क्या है? इसको समझे बिना इसका हेतु कैसे समझ में आयेगा। हमको तपस्वी बनाने का अभ्यास कराया जा रहा है। कल भी आपको बताया था कि सुविधाएँ भगवान ने बहुत दी हैं। पर जाग्रत वह है, प्रयत्नशील वह है जिसके पास इन्द्रियों का संयम है। साधन होते हुए भी मैं उनका भोग नहीं करूंगा। यह तपस्या का मार्ग है। लोग इस बात को नासमझी कहेंगे, मूर्खता कहेंगे। लोगों की बात में नहीं आना है, क्षत्रिय युवक संघ की बात में रहना है, तो यह संयम हमको करना पड़ेगा।

क्षत्रिय युवक संघ को अपने अन्दर कार्य करने दें। ऐसा नहीं करने देते हैं तो अनेकों शिविरों के बाद भी हमारे अन्दर परिवर्तन नहीं दिखाई देता है। गति दिखाई नहीं देती है। केवल कदमताल ही करते नजर आते हैं। दस शिविरों के बाद भी वहाँ के वहाँ। न कामनाएँ छूटी हैं, न क्रोध छूटा है, न वासनाएँ छूटी हैं। न अहंकार छूटा है, न मोह छूटा है। न लोभ छूटा है न संग्रह की भावना छूटी है। उन सबको छोड़ने का अभ्यास यहाँ करवाया जा रहा है। घट में रहते हुए घटनायक से मोह हो जाता है। घट के साथियों से भी मोह हो जाता है। घट के लिये जहाँ हमको स्थान मिलता है, वहाँ रहते हुए उस स्थान से भी मोह हो जाता है। उस मोह को दूर करने के लिये स्थान से अलग सोने को भेजना, एक घट से दूसरे घट में भेजना आदि किया जाता है। संघ का लक्ष्य आपको कष्ट देना नहीं है लेकिन कष्ट का अभ्यास करवाना जरूर है। अन्यथा छोटी-छोटी परिस्थितियों में हम विचलित हो जायेंगे। हमारे अन्दर स्थिरता नहीं आएगी। यम-नियम हमको जो बताये गए हैं, उनमें स्थिरता लाने के लिये अभ्यास करवाया जाता है। तब कहीं जाकर क्षत्रिय युवक संघ हमारे अन्दर वह काम कर सकता है। वह प्रकाश की ज्योति, वह दिव्य आवाज जो हमने सुनी है, वह न काँप पाएगी।

क्षत्रिय युवक संघ में हम आते हैं, पर क्या क्षत्रिय युवक संघ हमारे अन्दर आ पाया है? अगर वह हमारे अन्दर नहीं आता है तो पल-पल पर शंकाएँ उत्पन्न होंगी। क्योंकि हमने संघ को हमारे अन्दर काम करने की छूट नहीं दी। तब अपनी शंकाएँ सामने रखते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर से निर्बन्ध होना पड़ेगा। तब कहीं जाकर

(शेष पृष्ठ 34 पर)

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

- चैनसिंह बैठवास

मनुष्य द्वारा किये गये क्रिया-कलाप के आधार पर मनुष्यों के नीच, मध्यम व उत्तम ये तीन प्रकार निर्धारित किए हैं। इन तीन प्रकार की श्रेणी में उत्तम कोटि के मनुष्य अन्य दोनों से नितान्त भिन्न होते हैं। वे एक बार किसी कार्य को ग्रहण कर लेते हैं तो फिर उस संकल्प से उन्हें कोई नहीं डिगा सकता। उनके प्रयत्नों में कितनी ही बाधाएँ आएँ, वे अपने निश्चित लक्ष्य को त्यागते नहीं। कार्य प्रारम्भ करने के बाद आने वाली बाधाओं से पुनः पुनः प्रताड़ित होकर भी वे नए उत्साह से कार्य को पूर्णता तक पहुँचाने में तत्पर हो जाते हैं। ऐसे स्थिर स्वभाव तथा दृढ़ निश्चयी जन ही उत्तम जनों के रूप में पारगणित किए जाते हैं। दृढ़ निश्चयी एवं संयमी व्यक्ति अपने प्रयोजन को पूर्ण करने के क्रम में सुख या दुख का ध्यान नहीं करता, उसके लिये सुख-दुख दोनों समान होते हैं क्योंकि उसका ध्यान केवल अपने प्रयोजन की पूर्ति में लगा रहता है।

उत्तम कोटि के मनुष्य के बाद अब नीच प्रकृति के मनुष्य पर आते हैं। एक नीच मनुष्य जो मतलबी व स्वार्थी होता है, वह अपने स्वार्थ में रत रहने के कारण दूसरे के हित-अहित की कुछ भी परवाह नहीं करता। नीच मनुष्य के क्रिया-कलाप भी नीच होते हैं, जिससे दूसरों को दुःख पहुँचता है। उनकी नीच हरकतों से दूसरों पर बुरा प्रभाव पड़ता है और वहाँ की बनी बनायी व्यवस्था में विघ्न पैदा होता है। ऐसे नीच मनुष्य पशुओं से भी गये बीते होते हैं। पशु तो फिर भी अपनी मर्यादा में रहते हैं, पर ये मनुष्य होकर भी अपनी मर्यादा में नहीं रहते। ऐसे विवेकहीन मूढ मनुष्य जिनके विचार और कर्म नीच हैं, वे नीच कर्मों में ही लगे रहते हैं।

गीता में मनुष्य की दो श्रेणी बतायी है-एक दैवी प्रकृति वाला और दूसरा आसुरी प्रकृति वाला। आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य प्रवृति और निवृति, इन दोनों को ही नहीं जानते, इसलिए उनमें न तो बाहर-भीतर की शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है और न सत्य भाषण ही है। गीता 7/16

असुर स्वभाव वाले मनुष्य कर्तव्य-अकर्तव्य सम्बन्धी प्रवृति और निवृति को बिल्कुल नहीं समझते, इसलिये जो कुछ उनके मन में आता है, वही करने लगते हैं। ऐसे व्यक्ति अपवित्र, दुराचारी और मिथ्या भाषण करने वाले होते हैं।

चौपासनी विद्यालय जोधपुर में पढते समय पूज्य श्री तनसिंहजी का एक ऐसे ही व्यक्ति से पाला पड़ा। पूज्य श्री तनसिंहजी जब चौपासनी विद्यालय जोधपुर में पढ रहे थे, उस समय एक घटी घटना का जिक्र यहाँ किया जा रहा है-

एक शातिर विद्यार्थी ने आपसी रंजिश के कारण एक दूसरे विद्यार्थी के पेट में छुरा (चाकू) भोंक दिया। इस घटना के घटित होने की बात जब अन्य विद्यार्थियों तक पहुँची तो बहुत से विद्यार्थी एकत्रित हो गये और देखते-देखते दो गुट बन गये। उन एकत्रित विद्यार्थियों में पूज्य श्री तनसिंहजी भी सम्मिलित थे। सम्मिलित हुए विद्यार्थी जब छुरा भोंकने वाले दल के एक विद्यार्थी से इस घटना की जानकारी ले रहे थे, तो इस चालबाज विद्यार्थी ने पूज्य श्री तनसिंहजी की ओर ईशारा करके कहा, ये सब जानते हैं, मैं कुछ नहीं जानता, यह कहकर स्वयं वहाँ से बच निकला।

पूज्य श्री तनसिंहजी ने इस चालबाज विद्यार्थी को 'मतलब का यार' के नाम से सम्बोधित कर इस घटी घटना के सम्बन्ध में कहा-''मेरा तुमसे सबसे पहला साक्षात्कार राजा के सदावृत में हुआ। एक विद्यार्थी ने किसी दूसरे विद्यार्थी के पेट में छुरी भोंक दी। घाव गहरा नहीं था और विवाद का विषय भी आपसी झंझट का था। बात की बात में दो दल बन गए। छुरा खाने वाले विद्यार्थी का दल मजबूत और बलिष्ठ था। जिस विद्यार्थी ने छुरी भोंकी थी, वह छुरी तुम्हारी थी, पर ठीक उस जैसी एक

मेरे पास भी छुरी थी। बलिष्ठ दल ने हम दोनों को घेर लिया और पूछा, 'बताओ छुरी की घटना के विषय में तुम क्या जानते हो?' मैं तो कुछ जानता ही नहीं था, सो क्या बताता। तुम मेरे मित्र थे और सब कुछ जानते थे, पर उन बलिष्ठ लोगों को देखकर तुमने कहा था कि तुम कुछ नहीं जानते और यह विद्यार्थी अर्थात् मैं सब कुछ जानता हूँ। लोग मेरी ओर मुड़े। दो क्षण इतने छोटे थे, जिनमें मुझे निर्णय करना था, कि उन्हें मैं क्या उत्तर दूँ? तुम्हारी बेवफाई मैंने देख ली। निर्णय भी कर लिया और उन्हें मैंने कहा था, 'मैं सब कुछ जानता हूँ, लेकिन यह कुछ नहीं जानता, इसे छोड़ दो।' तुम्हें छोड़ दिया गया और तुम बिना मेरी ओर देखे खाना खाने चले गये। वे बलिष्ठ लोग मुझसे बदला लेने पर तुले ही हुए थे कि संयोग से एक अध्यापक के बीच में आने से बात टल गई। उन लोगों ने बाद में भी तीन बार मुझे पीटने और दण्डित करने का प्रयास किया था, पर हर बार मेरी तकदीर तेज थी और मैं बच गया।

''उस दिन की घटना पर मैंने बहुत विचार किया। मुझे तुम्हारी चारित्रिक दुर्बलता पर बड़ी ग्लानि हुई। क्षत्रियों की परम्परा के सामने तुम कितने ओछे निकले, पर समाधान कर लेता हूँ कि आखिर तुम थे तो मतलब के यार ही न।''

छुरा भोंकने की घटना में पूज्य श्री तनसिंहजी को फंसाने वाला पूज्यश्री का परिचित, मित्र होने का ढोंग करने वाला विद्यार्थी अपना मतलब निकालने में बड़ा होशियार व चतुर था। जीवन के क्षेत्र में चाहे सामाजिक क्षेत्र हो चाहे राजनैतिक क्षेत्र हो, अपना मतलब निकालने वाले मतलब के यार मिलते ही रहते हैं। उन्हीं के सम्बन्ध में पूज्यश्री ने कहा-

''मेरे मतलब के यार! अभिनय करने में तुम इतने चतुर हो कि मैं ही नहीं, सारी दुनिया तुमसे ठगी गई। एक ही बार नहीं, बार-बार ऐसा हुआ है। मालूम होता है, विधाता ने बड़े आराम के समय तुम्हारी रचना की है। हम लोगों में तो तुम सर्वेसर्वा बन गए थे। क्या करें, राजपूत तो जाति ही ऐसी है कि संसार में उनके सामने हर एक त्यागी और दानवीर बन सकता है, फिर तुम तो उन खटकों में भी माहिर हो, जो आजकल के हर खुशनसीब राजनीतिज्ञ को विरासत में मिला करते हैं। पर मैं तो तुम्हारे समस्त त्याग के ढकोसलों से परिचित हो गया। ....अब तुम्हें भी विश्वास हो गया होगा कि ये राजूपत जाति ही ऐसी है, जिनका शोषण हर एक मनचला कर सकता है, हर एक उसका नारा लगा सकता है और हर एक अपने स्वार्थों की पूर्ति करते हुए उनका हिमायती होने का हक जतला सकता है। दु:ख तो इस बात का है कि हम फिर भी दोषी ही रहे और तुम बन गये एक निर्दोष देवदूत।

''मैं अपने और दूसरों के दोषों को अपना बनाकर स्वीकार करूँ, यह मेरे लिये वास्तव में लाभदायक है और मुझे ऐसा करना भी चाहिए यदि मैं अपना विकास चाहता हूँ, तो मुझे यही मार्ग अपनाना चाहिये, पर ध्यान रखो, इससे नुकसान किसी को नहीं, केवल तुम्हें ही होगा। तुम अपनी आत्मचिंतन की और अपने दोषों को स्वीकार करने की क्षमता खो डालोगे। यह मार्ग यदि तुम अपनाते हो तो तुम्हें भी लाभ होगा। मुझे तो लाभ होगा ही इसलिए मुझे अब यही मार्ग अपनाना है।''

सामान्यत: किसी भी संकट या विपत्ति के आने पर व्यक्ति का मन-मस्तिष्क भ्रमित हो जाता है और यह भ्रम स्थिति आवेग-आवेश अथवा अवसाद में परिणित हो जाती है, किन्तु पूज्य श्री तनसिंहजी धीर गंभीर व्यक्ति थे। धीर गंभीर व्यक्ति के सम्मुख कठिनाइयों का समुद्र लहराता हो अथवा विपत्तियों का पहाड़ ही खड़ा हो जाए तो भी धीर गंभीर व्यक्ति का धैर्य कभी नष्ट नहीं होता, वे कभी विचलित नहीं होते।

पूज्य श्री तनसिंहजी की रीति-नीति ही दूसरों के कष्टों को अपने ऊपर लेना थी इसलिए उनके दोषों व उनकी गलती को अपने ऊपर लेकर उन्हें बचाने का प्रयास करते थे। ऐसा कार्य एक सच्चा क्षत्रिय ही कर सकता है। पूज्यश्री में क्षत्रिय भाव कूट-कूट कर भरा हुआ था। वे अपने लिये नहीं, सदैव दूसरों के सुखमय व कल्याणमय

जीवन के लिये ही जीये और जीते रहे। वे उदार और परोपकारी थे। पूज्यश्री का जीवन तो एक वृक्ष के समान था। वृक्ष का तो जीवन ही परोपकार के लिये होता है। वह तो मनुष्य व जीव मात्र की सेवा में ही पत्ते, फूल, फल आदि को अर्पित कर देता है। पूज्यश्री ने भी अपना जीवन इसी तरह जीया। वे अपने लिये नहीं प्राणीमात्र के हित के लिये जीवन पर्यन्त जीते रहे। दूसरों के लिये जीवन जीने वाले अपने मन, वचन व काया का उपयोग दूसरों के लिये करते हैं, ऐसे व्यक्ति पुण्य कमाते हैं। जिनका उद्देश्य प्राणी-मात्र का हित करना, उनको सुख पहुँचाना होता है, उसी के द्वारा कर्तव्य-कर्म हुआ करते हैं। कर्तव्य पथ पर चलने वाला लाभ-हानि नहीं देखता। वह कभी भी परिणाम की चिन्ता नहीं करता। इसलिए पूज्य श्री तनसिंहजी ने बिना किसी परिणाम की चिन्ता किये, दूसरों के दोषों को अपना बता कर स्वीकार कर लिया। परिणाम देखकर कार्य करने वाला कभी क्षत्रिय नहीं हो सकता। पूज्य श्री तनसिंहजी तो एक सच्चे आदर्श क्षत्रिय की प्रतिमूर्ति थे और दूसरों को क्षत्रियोचित संस्कारों से संस्कारित कर एक सच्चा क्षत्रिय बनाने में समर्थ थे।

पूज्य श्री तनसिंहजी कर्तव्यनिष्ठ थे। उन्हें अपना कर्तव्य भलीभाँति याद था। वे उदार स्वभाव के साथ-साथ कर्तव्यनिष्ठ भी थे, इसलिये उन्होंने कहा-

ईमान नहीं बेचा कर्तव्य की राहों में।
मैं डूब चुका पूरा, दुखियों की आहों में।।

पूज्य श्री तनसिंहजी स्वभाव से ही उदार, परोपकारी व सेवाभावी थे। वे दूसरों के सुख में अपना सुख ढूंढने वाले इंसान थे। दूसरों के लिये जीना और मरना उनके जीवन का हेतु व कर्तव्य था। इसलिए उन्होंने कहा-

मैंने दिया वो स्वभाव मेरा।
कर्तव्य मेरा अधिकार तेरा।।

मतलब के यार अपना दोष अन्यों पर मंढने वाले, पथ विचलित व संस्कार हीन होते हैं। वे तमोगुण से आक्रान्त होने के कारण अपना स्वधर्म भूल जाते हैं। उनमें नैतिक मूल्यों का ह्रास हो चुका होता है। वे अपने पुरखों की छोड़ी गई विरासत को भूल चुके होते हैं, इसलिए इन्सानियत को खाने वाली यह उनकी संस्कारहीनता मानवता को शर्मसार कर जाती है। उन्हें अनुकूल वातावरण में क्षत्रियोचित शिक्षा नहीं मिलती इस कारण अपनी गलती स्वीकार करने की न तो उनमें हिम्मत होती, न होसला ही। पूज्य श्री तनसिंहजी ने ऐसे पथ विचलित व असंस्कारी लोगों को संस्कारित करने के लिये श्री क्षत्रिय युवक संघ रूपी पौधा लगाया। ***(क्रमशः)***

जी लें

- श्री जीवित

थोड़ा मेरा, बाकी का तुम्हारा;
चलें, बाँट लें।

थोड़ा मीठा, बहुत खारा;
चलें, खा ही लें।

थोड़ा अच्छा, अधिक खराब;
चलें, स्वीकार लें।

थोड़ा उजाला, ज्यादा अंधेरा;
चलें, सह ही लें।

थोड़ा पास में, बाकी सब दूर;
चलें, चलते रहें।

थोड़ा हलका, और सब भारी;
चलें, उठा ही लें।

थोड़ा इष्ट, कितना ही अनिष्ट;
चलें, अपना लें।

थोड़ा सुख, बाकी दुख ही दुख;
चलें, जी ही लें।

<u>गतांक से आगे</u>

मेरी साधना

लेखक - पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य-श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद-प्रोफेसर रूपसिंह लिम्बड़ी

अवतरण-33

मैं अपने समाज-भवन को ढहता देखकर चिल्ला उठा,-हा दैव! यह कैसी दुर्दशा है मेरे समाज की। बिना कारण ही कार्य हो रहा है-यह क्यों?

''तू पागल है, इतना भी नहीं समझता कि इसने अपनी उपयोगिता खो दी है। अनुपयोगिता को साथ रखकर अस्तित्व जीवित नहीं रह सकता,-यह विधि का अटल नियम है।'' दैव की इस वाणी को मैंने सुना अवश्य पर समझा बहुत विलम्ब से।

भोग विलास अरु आलस्य प्रमाद में।
भूले सेवा व्रत बोझ बने जग में।।

पिछले दो अवतरणों में समाज की वर्तमान स्थिति का परिचय दिया। इस अवतरण में साधक अपने समाज की दुर्दशा से पीड़ित होकर चीत्कार उठा है। समाज को भवन का रूपक देकर पतनोन्मुख समाज की हालत देखकर आर्तनाद से दैव को पुकारता है-'यह मेरे समाज की कैसी दुर्दशा? पतन का कोई कारण न दिखाई देने पर भी पतन हो रहा है।' साधक की इस आर्त पुकार का उत्तर उसके हृदय में बैठे भगवान देते हैं-''अरे पागल तुझे इतनी भी समझ नहीं है कि इस संसार में जो अपनी उपयोगिता खो देता है, उसका अस्तित्व अपने आप मिट जाता है। यह विधि का, प्रकृति का अटल नियम है।'' हमने अपनी सामाजिक उपयोगिता खो दी है। हम अपने स्वाभाविक कर्तव्य पथ से विचलित हो गये हैं। हमने अपना स्वधर्म छोड़ दिया है। प्रकृति का यह अटल नियम है कि अनुपयोगी वस्तु या व्यक्ति का अस्तित्व अपने आप मिट जाता है। उसके पतन का अनुपयोगिता ही कारण है।

हमारा सबका अपना अनुभव है कि फलदार वृक्ष जब तक फल देता है हम उसकी रक्षा व सार-संभाल करते हैं, पानी देते हैं, खाद देते हैं। जब फल देना बन्द हो जाता है तो फिर खाद-पानी बन्द कर देते हैं। वृक्ष सूख जाता है। काट डालते हैं। जलाऊ लकड़ी बना देते हैं, जब तक जलाने के काम में आता है, सम्भाल कर रखते हैं; जब जलकर राख बन जाता है तो राख का कोई न तो संग्रह करता है, न सम्भालता है। वह अपने आप उड़ जाती है। मिट जाती है।

आज हमने, क्षत्रिय समाज ने सामाजिक एवं राजनैतिक उपयोगिता खो दी है। समाज के लिये, पीड़ितों के लिये, राष्ट्र के लिये, धर्म के लिये, प्राणी मात्र की रक्षा के लिये जिस जाति ने जो बलिदान दिए हैं, उससे भारतवर्ष का पूरा इतिहास भरा पड़ा है। संसार के इतिहास में जितना गौरवपूर्ण स्थान हम भारतीय क्षत्रियों को मिला है उतना संसार की किसी जाति को नहीं मिला है। ऐसा गौरवान्वित समाज आज सर्वत्र उपेक्षित है। हमारे नेताओं को, हमारे युवाओं को, हमारे चिंतनशील वर्ग को इस पर गंभीरता से सोच-विचार एवं चिन्तन करने का यह समय है।

हमारी उपयोगिता कैसे पुन: स्थापित की जाए इस विषय में स्कूलों में, कॉलेजों में धर्म संस्थानों में कहीं भी मार्गदर्शन मिलता नहीं है। क्षत्रिय युवक संघ ही एक ऐसा संगठन है जो हमें समाज में अपना गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करने का, संस्कार निर्माण का कार्य कर रहा है। अगर हम चाहते हैं कि स्वतंत्र भारत में हम अपने अधिकारों को पुन: प्रतिष्ठापित करें, तो हमारे हर बालक को, किशोर को, तरुण को और युवा को संघ की शाखाओं और शिविरों में भेजना चाहिए। हम इस कार्य में जितनी सक्रियता प्रदर्शित करेंगे उतना शीघ्र ही हम अपने गौरव को पुन: प्राप्त कर पायेंगे।

अर्क

मनु के वंशज हम बोयें पुण्य तो प्रफुल्लता पावें।
गर भूल से भी बोयें पाप, नर्क के अग्निमुख में जावें।।

अवतरण-34 :

यह उपयोगिता क्या है, कोई समझाओ तो इसे! इतने में ही इतिहास बोल उठा,-''जड़ और

चेतन, चर और अचर, स्थूल और सूक्ष्म, जीव और जगत के जीवन-अस्तित्व की एकमात्र शर्त,-ईश्वरीय विधान में सहायक होने वाला गुण।''

ओह! अब समझा। तब तो स्वधर्म का पर्यायवाची ही कहना चाहिए इसे। मेरे समाज को जीवित रहने के लिये इसे तो ग्रहण करना ही पड़ेगा। इस गूढ़ रहस्य, परम तत्त्व को जानते हुए भी मैं कैसे भूल गया था! मैं कितना भोला हूँ!

पिछले अवतरण में हमने देखा कि क्षत्रिय समाज के अध:पतन का कारण यह है कि वह अपनी उपयोगिता खो बैठा है। यहाँ साधक यह प्रश्न करता है-'यह उपयोगिता क्या है? वह उपयोगिता समझना चाहता है, कोई उसे समझाओ। तो इतिहास बोल उठा-अर्थात् हमारा इतिहास बताता है कि उपयोगिता क्या है? इतिहास के गहन एवं गंभीर अध्ययन से पता चलता है कि उपयोगिता क्या है।

जगत के प्रत्येक पदार्थ, जड़-चेतन, चर-अचर, जीव जगत के जीवन अस्तित्व की एकमात्र शर्त है-ईश्वरीय विधान में सहायभूत होना। इसका मतलब यह है कि जिस हेतु से ईश्वर ने जिसका निर्माण किया है, उस हेतु की पूर्ति के लिये अपना जीवन जीना। इस सृष्टि में मनुष्य को छोड़कर सब जड़-चेतन, सारी सृष्टि इस नियम को निभाते हैं। केवल मनुष्य ही इस सृष्टि का विचित्र प्राणी है जो स्वच्छंदी होकर अपने जीने का अधिकार भोग रहा है।

प्राणी मात्र को प्राप्त जीवन अधिकार ईश्वर की अहेतुकी कृपा का फल है। परन्तु उसमें एक शर्त भी है- 'जैसी करनी वैसी भरनी', अपने किए का फल भोगना पड़ता है। जान-बूझकर, स्वार्थ वशीभूत होकर भोग लालसा से अनुचित कर्म करे तो उसका फल भोगना ही पड़ता है। इतना ही नहीं किन्तु मनुष्य के अनुचित कर्म का फल उसकी विनाशक प्रवृति के कारण संसार के अन्य जीवों को भी भुगतना पड़ता है।

ईश्वरीय विधान में सहायक होने के गुण की बात जब साधक के समझ में आती है, तो वह समझ जाता है कि 'ईश्वरीय विधान में सहायक' होने का मतलब है स्वधर्म का पालन। मेरा स्वधर्म क्षात्रधर्म है। अत: क्षात्रधर्म का पालन ही ईश्वरीय विधान में सहायक होना है।

साधक को अपने भोलेपन का अहसास होता है कि वह कैसा भोला है। रहस्यमय परम तत्त्व को जानते हुए भी अपने स्वधर्म को भूल गया है। अब तो उसे अपने समाज के अस्तित्व के लिये अपने स्वधर्म-क्षात्रधर्म का पालन करना ही होगा। क्षात्रधर्म पालन अर्थात् ईश्वरीय गुण में सहायक कैसे हुआ जा सकता है यह बात पू. तनसिंहजी ने केवल तीन पंक्तियों में बता दी है-

दुखी जन के खातिर कृपाणें उठाई
तमोगुण से मेरी ठनी थी लड़ाई
भटकती जहाँ को राहें दिखाई

इन तीन पंक्तियों में क्षात्रधर्म का पूरा रहस्य आ गया है। इसका अपने जीवन व्यवहार में पालन करना ही ईश्वरीय विधान में सहायक होना है।

आज हम ईश्वरीय विधान में सहायक होने का अपना कर्तव्य भूल गये हैं। अपनी भूल को स्वीकार करके उसे सुधार लें, यही सबसे विनती है।

अर्क

हमारे दायें हाथ में अमृत कटोरी बायें में विष ठाम।
विष प्राशी मृत्यु पावे, इसमें अवनि पति को पाय।

चिन्तन मोती

वही हाथ हाथ है जो पीड़ितों की पीड़ा दूर करे

अवतरण-35 :

मेरे समाज के भौतिक अध:पतन और उसकी मानसिक पराजय का पर्यवसान उसकी आत्म-दुर्बलता और निराशा मूलक मनोदशा के रूप में हुआ है। समाज की इस स्थिति का प्रभाव व्यापक रूप से मेरी साधना पर भी पड़ा है। इसीलिए तो मेरी साधना आज मन्द-गामिनी हो स्थिर-स्थित सी हो रही है। तब समाज के इन रोगों के निराकरण के प्रश्न को भी मेरी साधना का आवश्यक अंग बनाकर कार्य करना पड़ेगा, क्योंकि मेरी साधना परिस्थिति निरपेक्ष होते हुए भी समाज-सापेक्ष है।

पराजय का एक कारण है मन की निर्बलता।

लक्ष्य प्राप्ति का एक कारण है दृढ मनोबल।

हमारे समाज के अध:पतन के दो कारण साधक ने यहाँ बताये हैं। एक है आत्म-दुर्बलता और दूसरा है निराशामूलक मनोदशा।

जब हमारे समक्ष कोई चुनौती रूप कार्य आता है तो हम बहुत ही निराश हो जाते हैं-'यह कैसे होगा? बड़ा मुश्किल काम है, मैं अकेला कैसे कर पाऊँगा? कोई सहयोग नहीं देंगे।' इत्यादि प्रश्न मन में उठते हैं या हम उठाते हैं। यह हमारी आत्म दुर्बलता है। इस निराशाजनक मानसिकता के कारण हम किसी प्रकार का साहस नहीं करते हैं। कोई भी जोखिम उठाने को हम तैयार नहीं होते हैं। समझ में नहीं आता है कि मौत को ललकारने वाली यह जाति, जिससे मौत भी मुकाबला करते भयभीत होती थी, इस जाति का साहस देखकर, उसके भुजबल का प्रकोप देखकर मौत भी दो कदम पीछे हट जाती थी, ऐसी वीर, साहसी जाति में यह निराशाजनक मनोदशा और आत्म-दुर्बलता कैसे आ गई?

इतिहास बताता है कि जब अंग्रेजों का शासन स्थिर हो गया तो उन्होंने हमारी जातीय शक्ति को खत्म करने के लिये हमें पहले तो जन साधारण से अलग कर दिया। हमें आराम प्रिय, विलासी, वैभव भोगी बनाकर हमारी स्वतंत्र विचार शक्ति को निर्मूल बना दिया। हमारे मूलभूत गुणों का ह्रास कर दिया। हमें साहसहीन और निर्वीर्य बना दिया। यह प्राकृतिक नियम है कि जब किसी भी देश, जाति या समाज में, जन समूह में वैभव और भोग विलास बढ जाता है तो उसका वैचारिक स्तर गिर जाता है। विचार ही व्यक्तित्व है। वैचारिक दुर्बलता व्यक्ति के आत्मगौरव, व्यक्तित्व के ओजस का हनन कर देती है।

हमें अपने खोये हुए आत्मबल को पुन: प्राप्त करना है। इसलिए सदाचार, सरलता, नम्रता एवं निखालिसता जैसे उत्तम गुणों को धारण करना होगा और दुराचार, कुटिलता, अहंकार एवं दंभ से दूर रहना होगा। आज शिक्षा का व्यवसायीकरण हो गया है। शिक्षा को आजीविका प्राप्ति का साधन बना दिया गया है। आज शिक्षा प्राप्त करने का और देने का हेतु उदर पूर्ति के लिये आवश्यक अर्थोपार्जन ही रह गया है। मूल हेतु चरित्रशील व्यक्तित्व का निर्माण भुला दिया गया है। आज की शिक्षा समृद्धि दे सकती है, संस्कार नहीं। ऐसी स्थिति में हमें अपने आत्मबल की प्राप्ति का एकमात्र साधन मिला है, वह है-'श्री क्षत्रिय युवक संघ'। संघ द्वारा प्रकाशित सत्साहित्य भारतवर्ष के हर एक क्षत्रिय परिवार में होना चाहिए। इसका केवल पठन ही नहीं, अध्ययन, मनन, चिन्तन करना चाहिए। अपनी युवाओं और युवतियों को संघ शिविर में भेजना चाहिए जहाँ उनके चरित्रशील व्यक्तित्व निर्माण की प्रवृत्तियाँ की जाती हैं। परन्तु देखने में यह आता रहता है कि हमारे अधिकांश बन्धु इस दिशा में अपेक्षित ध्यान नहीं दे रहे हैं। इतने बड़े समाज का, इतनी महान जाति का एक अल्पसंख्यक वर्ग ही जातीय पुनरुत्थान के कार्य में सक्रिय है। इन सक्रिय कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहित करने की बजाए उन पर टीका-टिप्पणी की जाती हुई देखने में आती है। इसका परिणाम यह होता है कि जो काम हो रहा है वह भी मंद हो जाता है। समाज के इन रोगों के निराकरण के प्रश्न को भी मेरी साधना का अंश बनाकर कार्य करना पड़ेगा। क्योंकि, मेरी साधना परिस्थिति निरपेक्ष होते हुए भी समाज सापेक्ष है अत: यदि रोग का निराकरण नहीं हुआ तो वह बढता जाएगा, रोगी को मालूम भी नहीं होगा कि वह रोगग्रस्त है। क्योंकि आज भी आत्म दुर्बलता और निराशा मूलक मनोवृति की दशा में मस्त बनकर घूम रहे हैं।

मेरी साधना के रचियता ने हमें कर्मधारी क्षत्रिय होने की प्रेरणा दी है। हम भी साधक बनें। उनके एक-एक अवतरण के एक-एक वाक्य को, शब्द को समझें, आत्मसात करें और तद्नुसार अपना जीवन बनावें। तब जाकर हमें क्षत्रियोचित मृत्यु का अधिकार प्राप्त होगा। मेरी साधना आधुनिक अर्जुन की गीता है। हमें रोज-रोज इसका पाठ करना होगा। तब जाकर हमें क्षत्रियोचित जीवन जीने का बल मिलेगा।

भ्रमों में जो भूले हैं ज्योति दिखानी।
आत्मबल की खोई शक्ति जुटानी।
- पू. तनसिंहजी

अवतरण-36 :

मैं नया समाज-भवन बनाऊँगा, जिसका प्रत्येक पत्थर अद्वितीय अतुलनीय और अमूल्य होगा। भावना के जल और कर्म के चूने से उसे पोतूँगा। वेदना के रंग को सामर्थ्य की तूलिका में भरकर उसे रंगूंगा। आत्म-ज्ञान के सुन्दर चित्रों से उसे सजाऊँगा। उसके मध्य-कक्ष में माँ शक्ति का एक ऐसा सुन्दर दीप जलाऊँगा जो मेरे जीवन रूपी तेल से निरंतर परिपूर्ण होता रहे।

परिस्थिति के वास्तविक ज्ञान से वेदना का अनुभव होता है। वेदना ही परिस्थिति को पलटने का बल देती है।

इसके पूर्व के अवतरणों में साधक ने समाज की गतिविधि का वर्णन करते हुए कहा कि समाज-भवन जीर्ण-शीर्ण हो गया है। देखते ही देखते गिर गया। समाज-भवन की यह हालत देखकर साधक दुखी होता है। ऐसा क्यों हुआ? कारण ढूंढ़ता है। कारण मिल गया-समाज ने अपनी उपयोगिता गंवा दी है। अपनी इस दशा का, अध:पतन का कारण है अपनी आत्म निर्बलता एवं निराशामूलक मनोदशा।

समाज की पतनोन्मुख दशा देखकर साधक की विषाद जन्य वेदना उसे हिम्मत देती है। वह भाग्य के भरोसे पर, भगवान की सहायता के आधार पर हाथ जोड़कर बैठे रहने के बजाए अपने समाज-भवन के नवनिर्माण का संकल्प करता है। यह नया समाज-भवन बनाने का निर्णय एक रूपक है। यह भौतिक भवन नहीं है। परन्तु पूरे भौतिक भवन का रूपक लेकर साधक कैसे अपने संकल्प की पूर्ति करना चाहता है, यह बताया गया है। भवन निर्माण में पत्थर चाहिए। नींव में पत्थर रखने पड़ते हैं। साधक नींव की ईंट, नींव का पत्थर बनना चाहता है। वह इस तरह से समाज के नूतन निर्माण का सामाजिक पुनरुत्थान का कार्य करना चाहता है जिसमें प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा की कामना नहीं हो। आजकल जो भी सामाजिक कार्य के लिये निकलता है, उसे मान-सम्मान की अपेक्षा है। वह चाहता है कि उसकी सामाजिक प्रवृतियों का प्रचार-प्रसार हो अत: कार्य जिस तरह से व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा रहित होना चाहिए वैसा नहीं हो पाता है। सबको अपने नाम पर तालियाँ चाहिए। लोकाकर्षण है। किन्तु साधक का संकल्प है कि मैं ऐसा अद्वितीय और अतुलनीय पत्थर बनूंगा जो अमूल्य है। समाज की सेवा का मूल्य नहीं वसूल करना चाहिए। समाज की सेवा का मूल्य वसूल करने की वृत्ति आजकल बढती जा रही है। थोड़ा-सा काम किया कि तुरन्त उनके सम्मान समारोह का आयोजन करके, हार पहनाकर, प्रशस्तिपत्र, मोमेन्टो, स्मृति चिह्न अर्पण करके प्रसिद्धि दी जाती है, फिर कार्य गौण हो जाता है। इसलिए साधक अद्वितीय और अतुलनीय कार्यकर्ता बनकर मौन सेवा करना चाहता है। अपनी भावना का जल और कर्म का चूना बनाना चाहता है। समाज-भवन के नवनिर्माण में भावुकता से भरे एवं कर्मनिष्ठ कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। जब तक अपनी दुर्दशा का अनुभव नहीं होता, तब तक वेदना नहीं होती है। और जब तक वेदना की कसक नहीं उठती है, तब तक कार्य में निष्ठा नहीं होती है। वेदना ही नूतन निर्माण का, क्रान्ति का, परिवर्तन का प्रेरक बल है।

अपने समाज में सामर्थ्य है। योग्यता है। भावना भी है, किन्तु वेदना नहीं है। हम अपनी वर्तमान स्थिति से असन्तुष्ट नहीं हैं। काल का प्रभाव स्वीकार करके बैठ गए हैं। काल-परिस्थिति हम पर हावी बन बैठी है।

कुछ भावुक, कर्मठ, त्यागी, तपस्वी कार्यकर्ता अवश्य रात-दिन समाज के पुनरुत्थान में लग गये हैं। परन्तु अभी बहुत बड़ा समूह इससे दूर है। साधक कहता है- 'भवन के मध्य-खण्ड में माँ शक्ति का एक सुन्दर दीप जलाऊँगा।' इसका मतलब यह है कि हमारे जीवन का केन्द्र बिन्दु शक्ति होना चाहिए। शक्तिहीन क्षत्रिय की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। 'शक्ति' और 'क्षत्रिय' एक दूसरे के पर्याय हैं। इस जगत के सब प्राणियों में मनुष्य श्रेष्ठ है। 'न मानुषात् श्रेष्ठतर:'। और मनुष्यों में क्षत्रिय

(शेष पृष्ठ 34 पर)

आईये शंबूक का वध करें

- कृपाकांक्षी

भगवान राम के जीवन से सम्बन्धित एक कथा प्रचलित है। जिसमें शंबूक नाम का एक शूद्र पेड़ से उल्टा लटक कर तपस्या कर रहा होता है। उसके तपस्या करने से ब्राह्मण बालक मर जाता है। सभी ऋषि-मुनि ब्राह्मण बालक के मरने का कारण ढूंढ़ते हैं लेकिन सफल नहीं होते। अन्ततः भगवान राम से न्याय की गुहार करने पर भगवान राम शंबूक को ढूंढ़ते हैं, तलवार से उसका सिर काटते हैं तो ब्राह्मण बालक पुनः जीवित हो जाता है।

आज के तथाकथित बुद्धिवादी लोग इस कथानक के आधार पर भगवान राम को पक्षपाती कहकर आलोचना करते हैं। पू. स्वामी अड़गड़ानन्द जी महाराज ने पुस्तक 'अनछुये प्रश्न' के 'शम्बूक' नामक प्रकरण में इसका यथार्थ रूप, आध्यात्मिक चित्रण किया है। स्वामीजी के अनुसार शंबूक अल्पज्ञ है लेकिन स्वांग भरता है पूर्णत्व वालों का। शंबूक समत्व की वृत्ति का स्वांग कर रहा है। ऐसा करते ही ब्राह्मण बालक मर गया, अर्थात् हृदय में जो ब्रह्म चिन्तन आंशिक रूप से जागृत हुआ था वह प्रसुप्त (कुण्ठित) हो गया। न जाने वह कब मर गया। ब्रह्म चिन्तन, भजन बन्द हो गया। ऋषियों ने अनुमान लगाया किन्तु जाना नहीं। इस कमी को बाहर कोई जान नहीं सकता कि कौन ढोंगी है कौन सही है? किन्तु भगवान राम ने उसे खोज लिया क्योंकि वे अन्तःकरण से, आत्मा से रथी हैं। त्याग ही तलवार है। जहाँ भगवान ने त्याग के द्वारा अपौरुषेय प्रेरणा के द्वारा उसे नीचे गिराया, वह ब्राह्मण बालक जीवित हो गया, अर्थात् दैवी वृत्तियाँ उसमें पुनः प्रवाहित हो गई।

यह तो हो गई उस कथानक और उसके आध्यात्मिक यथार्थ की बात, लेकिन क्या वह रूपक हमारे से सम्बन्धित है? संघ की साधना में संलग्न हम भी क्या कभी शंबूक बनते हैं? क्या हमारा भी ब्राह्मण बालक, संघ चिंतन मरता है? क्या हम हमारे शंबूक का वध कर पाते हैं? क्या हमारा ब्राह्मण बालक, साधना चिन्तन, पुनर्जीवित हो पाता है? ये सभी प्रश्न हमारे लिये अति महत्त्वपूर्ण हैं।

संघ की कृपा से हम भी जाने-अनजाने ब्रह्म चिंतन के पथ पर आरूढ हुए हैं। हम शूद्रेतर थे लेकिन पू. तनसिंहजी की कृपा को यदि हमने तनिक भी आत्मसात करने का प्रयास किया है तो हम शूद्रतेर से शूद्र बनने को अग्रसर हुए हैं। यदि हम अपने गुण, कर्म एवं स्वभाव को समझकर साधना मार्ग पर आगे बढना प्रारम्भ करेंगे तो हमारा वही गुण, कर्म व स्वभाव हमें आगे के सोपाना की ओर धकेलेगा और उत्तरोत्तर गुण, कर्म व स्वभाव में परिवर्तन हमें क्रमशः वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण सोपानों से गुजारता हुआ ब्राह्मणेत्तर स्थिति (ब्राह्मण से आगे की स्थिति) तक भी पहुँचा देगा। लेकिन यदि हम शंबूक बन गये, अर्थात् अपने गुण, कर्म व स्वभाव के विपरीत हमारे आगे चलनेवाले मार्गदर्शकों का कहना मानने की अपेक्षा, जो वे कर रहे हैं उसकी नकल करने लगे तो संघ की कृपा से हमारे में जो ब्रह्म चिंतन जागृत हुआ है वह प्रसुप्त हो जाएगा, मर जाएगा। ब्रह्म चिंतन अवरुद्ध हो जाएगा, भजन बन्द हो जाएगा। इसीलिए हमारे शास्त्र कहते हैं कि गुरु कहे वैसे करना चाहिए, गुरु करे वैसे नहीं करना चाहिए। इसलिए हम सबको सावधानी पूर्वक अपने अन्दर के शंबूक का वध करने को तत्पर रहना चाहिए, जागरूक रहना चाहिए। आएँ, परमेश्वर से प्रार्थना करें कि वे कृपा पूर्वक हमारी इस जागरुकता को जागृत रखें।

✲

किसी भी असत्य से लम्बे समय तक किसी रीती जगह को भर करके नहीं रखा जा सकता।

- शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय

बोधकथा

माया-दर्शन

सुदामा ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि कृपा कर एक बार मुझे अपनी माया दिखाइये। यों तो यह हमारा संसार ईश्वर की माया ही है, परन्तु सुदामा अधिक स्थूल रूप से ईश्वर की माया का अनुभव करना चाहते थे। जब उन्होंने अधिक आग्रह किया तब उस समय तो श्रीकृष्ण चुप रहे। कुछ समय बाद में एक दिन श्रीकृष्ण और सुदामा दोनों एक साथ जमुना नदी पर स्नान करने गये। श्रीकृष्ण अभी अपने वस्त्र उतार ही रहे थे कि सुदामा आगे बढे और पानी में गोता लगाया।

गोता लगाते ही वे पानी के नीचे ही नीचे बहने लगे और एक दूर देश में जाकर निकले। उस देश का राजा एक दिन पहले ही मर चुका था और वहाँ की प्रथा के अनुसार दूसरे दिन नगर के द्वार से सर्व प्रथम प्रवेश होने वाले को वहाँ का राजा बना दिया जाता था। दूसरे दिन सर्वप्रथम सुदामा ने प्रवेश किया और उस प्रथा के कारण सुदामा को उस देश का राजा बना दिया गया।

थोड़े समय पश्चात् सुदामा का एक सुन्दर राजकुमारी के साथ विवाह हो गया और कालान्तर में अनेक बच्चे भी हो गये। सुदामा आराम से जीवन बिताने लगे परन्तु सदा एकसे दिन सबके कहाँ रहते हैं? एक बार उनकी पत्नी बीमार पड़ी, बहुत कुछ चेष्टा करने पर भी उसे बचाया न जा सका और उसकी मृत्यु हो गई। उस देश का रिवाज था कि पत्नी मर जाए तो पति को उसके साथ 'सता' होना पड़ता था। अत: रिवाज के अनुसार सुदामा को भी सता होने के लिये कहा गया। ऐसी अनोखी बात सुनकर सुदामा तो दंग ही रह गये। वे अपनी पत्नी के दुख को तो भूल गये, उल्टे उन्हें अपनी प्राण रक्षा की फिकर पड़ी। सुदामा ने बहुत चेष्टा की कि उन लोगों से छुटकारा मिल जाये, परन्तु वे लोग कहाँ मानने वाले! अन्त में जब सुदामा ने देखा कि किसी भी प्रकार पिण्ड छूटने वाला नहीं तब उन्होंने चतुराई से काम लिया। बोले-''अच्छा तो मैं तैयार हूँ। चिता पर चढने से पूर्व स्नान कर शुद्ध हो आता हूँ,'' लोग सहमत हो गये।

स्नान करने के लिये जैसे ही सुदामा ने गोता लगाया कि वे पहले की भाँति पानी के नीचे-नीचे बहने लगे। इस बार वे प्राणों का मोह त्याग कर स्वयं अपनी चेष्टा से बहे चले जा रहे थे। बहते-बहते जब बहुत दूर चले गये तब उन्होंने पानी के ऊपर सिर उठाया तो उनके विस्मय का अंत नहीं। उन्होंने देखा घाट वही है जहाँ श्रीकृष्ण के संग स्नान करने आये थे। और भी देखा कि श्रीकृष्ण नहाने की तैयारी में खड़े हुए हैं। घबराये हुए तो थे ही, श्रीकृष्ण को देखते ही बोल पड़े-''महाराज! भागिये-भागिये..... वे लोग पीछा करते हुए आ रहे हैं और थोड़ी देर में मुझे पकड़ कर मार डालेंगे।'' श्रीकृष्ण ने कहा, ''अरे भाई, कौन आ रहे हैं, क्यों आ रहे हैं, किसको मार डालेंगे और क्यों? तुम्हें यह हो क्या गया है, अभी पल भर पहले ही तो तुमने पानी में गोता लगाया है। पानी से बाहर निकल कर ये बहकी-बहकी बातें क्यों कर रहे हो?''

तब सुदामा ने आद्योपान्त सारी कथा सुनाई जो उन पर बीती थी। सुनकर श्रीकृष्ण हंसने लगे। उन्होंने अपनी माया समेट ली। सुदामा को भी समझने में देर नहीं लगी कि यही उनकी माया का दर्शन था जिसे देखने को स्वयं उन्होंने प्रार्थना की थी। काँपते हुए स्वर में सुदामा ने प्रार्थना की,-''हे भगवान! आगे से आप अपनी माया का जाल हम पर कभी न डालें। अभी-अभी जो कुछ देखा उसी को याद कर-कर के मैं थर-थर काँप रहा हूँ और धीरज नहीं बँध रहा है।''

ईश्वर की शक्ति का ही दूसरा नाम माया है। वह शक्ति गहन है और उसको समझना कठिन है। माया के ही कारण एक क्षण एक वर्ष के बराबर मालूम पड़ सकता है और एक वर्ष एक क्षण जैसा।

✲

शाहबाज खाँ की मेवाड़ पर चढ़ाई

– डॉ. राजशेखर व्यास

महाराणा प्रताप पर विजय प्राप्त करने अथवा उसको पकड़ लेने के अपने मकसद में नाकाम रहने पर अकबर मन ही मन निराश हुआ। उसने महाराणा प्रताप पर विजय प्राप्त करने के मुद्दे को प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया। यही वजह थी कि स्वयं असफल होने के बावजूद भी अकबर ने महाराणा प्रताप के विरुद्ध मुगल सेना को भेजने का क्रम जारी रखा।

सन् 1577 ई. में अकबर ने मुगल दरबार के एक नामी सिपहसालार शाहबाज खां मीरबक्षी को महाराणा प्रताप के विरुद्ध भेजा। शाहबाज के साथ मुगल दरबार के कई अमीरों और मनसबदारों सहित एक जर्राफ फौज को भेजा गया। इस फौज में मिर्जा अब्दुर्रहीम खानखाना, शरीफखां, गाजीखां आदि मुगल अमीरों के साथ आमेर का राजा भगवानदास और कुंवर मानसिंह भी शरीक थे। यह फौज 15 अक्टूबर, 1577 ई. के दिन प्रताप के विरुद्ध मेवाड़ की चढ़ाई के लिये रवाना हुई। लेकिन फौज के रवाना हो जाने के बाद मुगल फौज के मुख्य सेनापति शाहबाजखां को यह शक हुआ कि राजा भगवानदास और कुंवर मानसिंह महाराणा प्रताप के हमकौम हैं, अत: मौका पड़ने पर धोखा देकर प्रताप से मिल सकते हैं। लिहाजा शाहबाज खां ने रास्ते से ही भगवानदास और कुंवर मानसिंह को वापस अकबर के पास भेज दिया और दूसरे मुगल अमीरों तथा जंगी फौज के साथ मेवाड़ की तरफ बढ़ा।

इन दिनों महाराणा प्रताप कुंभलगढ़ में रहकर अपने राज्य की व्यवस्था सुधारने में लगा हुआ था। जब उसे बड़ी सेना के साथ शाहबाजखां के मेवाड़ पर चढ़ आने की खबर मिली तो, वह भी सावधान हुआ और उसने युद्ध सामग्री इकट्ठा करना प्रारम्भ किया। लेकिन शाहबाजखां ने जल्दी ही कुंभलगढ़ की तलहटी में स्थित केलवाड़ा पर अधिकार कर लिया और फिर कुंभलगढ़ को घेर लिया।

इस परिस्थिति में महाराणा प्रताप और उसके सैनिकों ने छापामार युद्धनीति अपनाकर मुगल सेना से लोहा लेने का निश्चय किया। महाराणा प्रताप के सैनिकों ने पहाड़ों की घाटियों में जा-जाकर मुगल सेना पर हमले बोलना शुरू किया। इस प्रकार मुगलों पर हमले करके मेवाड़ के सैनिकों ने मुगल फौज को परेशान करना प्रारम्भ किया। सिलसिला लम्बे समय तक चलता रहा और इसी में साढ़े पांच महीने का समय बीत गया। इतना लम्बा समय बीत जाने पर कुंभलगढ़ के किले में खाने पीने के सामान की कमी होने लगी। उधर मुगल फौज ने अपनी घेरेबंदी के तहत नाड़ोल ओर केलवाड़ा की तरफ पुख्ता नाकेबंदी कर दी। इससे कुंभलगढ़ में किसी भी तरीके से रसद आदि का पहुँच पाना दूभर हो गया। किले में पीने के पानी की भी कमी होने लगी।

इस प्रसंग में एक देशद्रोही की घटना का उल्लेख करते हुए कर्नल जेम्स टाड ने अपने ग्रंथ ***'एनाल्स एण्ड एंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान'*** में कहा है कि महाराणा प्रताप ने अपनी बहादुरी और दृढ़ता से कुंभलगढ़ के किले पर मुगल सेना के प्रवाह को कई दिनों तक रोके रखा और मुगल सेना को अपने उद्देश्य को पूरा करने में सफलता प्राप्त नहीं हुई। लेकिन देशद्रोही देवराज की शत्रुता के कारण महाराणा प्रताप को कुंभलगढ़ छोड़ना पड़ा। कर्नल टॉड लिखता है कि कुंभलगढ़ में हमेशा जल से भरा रहने वाला 'नागन' नाम का एक कुण्ड था। इस कुण्ड का पानी कभी टूटता नहीं था। गढ़ में रहने वाले सभी लोग उसी कुंड का पानी पीते थे। प्रताप के शत्रु देवराज को यह बात मालूम थी। उसने कुंभलगढ़ में पानी की सुविधा की जानकारी मुगल सेनापति को दी और यह सुझाया कि यदि सर्प के जहर से उस कुण्ड के पानी को जहरीला बना दिया जाए तो किले में रहने वाली सेना को किल्लत का सामना करना पड़ जाएगा और मुगलों का काम आसान हो जाएगा।

कर्नल जेम्स टॉड ने लिखा है कि धूर्त देवराज की सलाह के मुताबिक मुगलों ने धूर्तता से उस कुंड के पानी में जहर घुलवा दिया। इससे कुंड का पानी पीने के लायक नहीं रहा और किले में पानी की किल्लत हो गई।

स्वीकारा जाता है कि इसी दौरान कुंभलगढ़ के किले में एक दिन एक भारी भरकम तोप, जिसमें बारूद गोले भरे थे, अचानक फूट गई। इससे किले में एकत्रित रसद सामग्री और युद्ध सामग्री करीब-करीब नष्ट हो गई। ऐसी स्थिति में पीने के पानी के साथ खाद्य सामग्री और युद्ध सामग्री का भी कुंभलगढ़ में अभाव हो गया। तब किले में रह रही मेवाड़ की सेना के सामने भारी कठिनाई खड़ी हो गई।

मेवाड़ के सरदारों, सामंतों और सैनिकों ने इस प्रकार की कठिन परिस्थितियों में हमेशा अपने महाराणा और उसके परिवार की रक्षा करना अपना फर्ज माना था। उसी फर्ज को दोहराते हुए मेवाड़ के सरदारों ने प्रताप को कुंभलगढ़ से निकलकर अन्यत्र चले जाने का मशविरा दिया। मेवाड़ के सरदार और सैनिक यह जानते थे कि महाराणा प्रताप आसानी से उनकी राय पर अमल नहीं करेगा। इसलिए उन्होंने प्रताप से कहा कि, 'किले को मुगल सेना ने घेर रखा है, और इधर किले में खाने-पीने की सामग्री की कमी के साथ पीने के पानी की भारी किल्लत पैदा हो गई है। ऐसी स्थिति में महाराणा का किले में घिरकर रहना उचित नहीं है, क्योंकि जो परिस्थितियाँ बन गई हैं, उनमें महाराणा की जान को भारी खतरा है। ऐसे हालात में भी यदि महाराणा किले में रहते रहे और उनको कहीं कुछ हो गया, तो फिर मेवाड़ के वतन पर मेवाड़ियों का दावा करने वाला कोई नहीं बचेगा। इस प्रकार की बातें कहकर मेवाड़ का भला चाहने वाले सरदारों-सामंतों ने सांकेतिक रूप से महाराणा को यह समझाया कि अकबर के साथ मेवाड़वासियों को लम्बा युद्ध लड़ना है, और युद्ध को लम्बा खींचने के लिये महाराणा प्रताप का जीवित रहना नितान्त आवश्यक है।

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में इस प्रकार की समझाइश करते हुए सरदारों और सैनिकों ने महाराणा प्रताप को विश्वास दिलाया कि कुंभलगढ़ से महाराणा प्रताप के निकल जाने के बाद भी मेवाड़ की स्वामीभक्त सेना मातृभूमि की रक्षा के लिये कोई कसर नहीं रखेगी।

जब मेवाड़ के सरदारों ने महाराणा प्रताप को भूत भविष्य और वर्तमान की तरफ इशारा करते हुए इस प्रकार समझाया तो प्रताप कुंभलगढ़ से निकल कर दूसरी जगह जाने के लिये तैयार हो गया। उसने कुंभलगढ़ की रक्षा का भार अपने मामा सोनगरा भाण अखयराजोत को सौंपा और स्वयं कुंभलगढ़ से निकलकर राणपुर होता हुआ ईडर राज्य के चूलिया गाँव में जा ठहरा।

कुंभलगढ़ से प्रताप कब और कैसे निकल गया, इसका पता मुगलों को नहीं चल पाया। वे यह समझ कर कि किले में रसद पानी की कमी पड़ गई है तथा निश्चित रूप से प्रताप और मेवाड़ के सैनिक परेशानी में हैं, किले पर आक्रमण करने लगे। किले के अंदर से मेवाड़ के वीर योद्धा भी मुगल आक्रमणों का जवाब देने लगे। अब तो मेवाड़ के योद्धा बेधड़क और निश्चिंत भी हो गए थे। प्रताप के निकल जाने के बाद उन्हें कोई खतरा नहीं रहा था। वे तो इस अवसर की प्रतीक्षा में थे कि कब किले के किवाड़ खोलने के आदेश मिलें और कब वे मुगलों के सामने होकर अपनी तलवारों की रक्त-प्यास बुझाएँ। ऐसे में ही मेवाड़ की सेना के वरिष्ठ योद्धाओं ने किले के द्वार खोलकर मरने-मारने के लिये अन्तिम युद्ध करने का निश्चय किया।

इस निश्चय के अनुसार अपने अग्रणी योद्धा सोनगरा भाण का निर्देश मिलते ही मेवाड़ की सेना के बहादुरों ने कुंभलगढ़ के सभी द्वार खोल दिए और मुगल सेना पर टूट पड़े। मेवाड़ की सेना और मुगल सेना के बीच भयानक युद्ध होने लगा। सोनगरा भाण आदि मेवाड़ की सेना के नामी बहादुर किले के द्वारों और मंदिरों की रक्षा के लिये प्राण-प्रण से युद्ध करने लगे। किन्तु मेवाड़ के सैनिक मुट्ठि भर थे और मुगल सेना विशाल थी। ऐसी स्थिति में मेवाड़ का एक-एक योद्धा कई-कई मुगल सैनिकों का सामना

करते हुए वीरगति प्राप्त करता रहा। अंत में जब मेवाड़ का एक भी बहादुर किले में बच नहीं पाया तो शाहबाजखां ने खाली पड़े कुंभलगढ़ पर 3 अप्रेल, 1578 ई. के दिन अपना अधिकार जमा लिया। किन्तु किले पर अधिकार कर लेने के बाद भी शाहबाजखां हाथ मलता रह गया। महाराणा प्रताप, जिसको पकड़ने के लिये छह महीने की यह कवायद की गई थी, वह किले में शाहबाजखां को कहीं नजर नहीं आया। तब शाहबाजखां बहुत निराश हुआ। उसकी प्रताप को पकड़ने अथवा युद्ध में परास्त करने की तमाम कोशिशें नाकाम रहीं। कुंभलगढ़ पर अधिकार करते समय जो मंसूबे शाहबाजखां ने संजोए थे, वे सब बिखर गए। महाराणा प्रताप तो मुगल सेना के घेरे से ओझल होता हुआ पहले ही निकल चुका था।

प्रताप को पकड़ पाना तथा उसकी युद्ध नीति और रणकौशल का पार पा सकना मुगल सिपहसालारों या मुगल सेना के बूते के बाहर की बात थी। स्थानीय मान्यताओं के तहत स्वीकारा जाता है कि महाराणा प्रताप मुगल सिपहसालारों अथवा मुगल सेना का सामना होने पर ओझल हो जाया करता था। वह अपने शरीर पर हमेशा कतिपय दैवी अस्त्र-शस्त्रों को धारण किए रहता था। उसकी दोनों खड़गें दैवी शक्ति युक्त थीं, जो बेचरा माता और बहरी जोगन की दी हुई थी। वह हारीत राषि द्वारा बापा रावल को दी गई स्वर्ण विजय वैजयंती को हमेशा अपने मस्तक, बाहुओं और वक्षस्थल पर धारण किए रहता था। उसका कवच (जिरह बख्तर) स्वर्णक्षरों में दुर्गासप्तशती के अन्तर्गत आने वाले देवी कंचन से मंडित था, जिसे नित्य शक्ति के आराधक आचरण श्रेष्ठ ब्राह्मण द्वारा देवी कवच के मंत्रों से पूजित और अभिमंत्रित किया जाता था। लोक विश्वासों में यह भी मान्यता है कि महाराणा प्रताप को किसी सिद्ध पुरुष ने हूमा पक्षी की कलंगी दे रखी थी, जिसे अपनी भुजा पर बाँध लेने से वह अदृश्य हो जाया करता था। ऐसे दिव्य अस्त्र-शस्त्रों अथवा दिव्य शक्तियों और अपनी धर्मनिष्ठा, सत्यनिष्ठा और राष्ट्रनिष्ठा की दिव्य शक्ति के कारण ही महाराणा प्रताप यथावसर शत्रु के सामने ओझल हो जाता था और रणक्षेत्र में किसी भी प्रकार के शत्रु पर भारी पड़ता था।

अपने दिव्य अस्त्र-शस्त्रों के सहारे ओझल हो जाने की यह मान्यता जिसे मुसलमान लेखकों ने भी स्वीकारा है चाहे कल्पित भी हो, फिर भी यह तो सत्य है ही कि खमनोर युद्ध के बाद अकबर और उसके सिपहसालारों ने महाराणा प्रताप को जहाँ कहीं भी घेरकर उसे पकड़ने की चेष्टाएँ की, उन सब में हर बार मुगलों को मुंह की खानी पड़ी और मायूसी ही उठानी पड़ी। शाहबाजखां को भी कुंभलगढ़ पर कब्जा कर लेने के बाद ऐसी ही मायूसी उठानी पड़ी। इससे वह मन ही मन दुःखी और क्रोधित हुआ। उसी क्रोध में उसने मुगल सेना को मेवाड़ के इलाकों में लूटपाट करने के लिये भेजा। शाहबाजखां के हुक्म पर मुगल सेना ने गोगुन्दा, उदयपुर आदि स्थानों पर लूटपाट मचाई। इस दौरान शाहबाजखां महाराणा प्रताप को पकड़ने के लिये इधर-उधर भटकता रहा। लेकिन वह कामयाब न हो सका। इसी नाकामी की नामोशी में शाहबाजखां मई 1578 के अन्त में लौटकर अकबर के पास चला गया और प्रताप स्वयं को और अपने मुल्क को आजाद रखने में कामयाब रहा।

गुलाम

गुलाम और आजाद में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य है, गुलाम सदा अपने मालिक का हित सोचता है और जूतों के जोर से सोचता है। जबकि आजाद राष्ट्र का हित सोचता है और अपनी पूरी श्रद्धा के साथ सोचता है। गुलाम का स्वर्ग आकाश में रहता है और आजाद का स्वर्ग उसका अपना देश होता है-जिस मिट्टी में उसकी काया बनी और जिस मिट्टी की गोद में वह अन्तिम सांस लेगा।

- मोहनलाल महतो 'वियोगी'

महत्त्वपूर्ण कल्याणकारी बातें

- जयदयाल जी गोयन्दका

दुखी आदमियों में विशेष रूप से भगवान रहते हैं, उनकी सेवा करना भगवान की सच्ची सेवा करना है। आतुर की सेवा करने से भगवान नारायण शीघ्र प्रकट होते हैं। अतिथि रूप में नारायण की सेवा करें, नारायण हमारी परीक्षा लेने के लिये लीला कर रहे हैं। जो उत्तीर्ण हो गया उसका बेड़ा पार है। भगवान ऐसी परिस्थिति पैदा करते हैं कि देखें इसके हृदय पर कैसा प्रभाव पड़ता है।

मेरे मन में यह बात आई कि सबसे बढकर है प्रभु से प्रेम करना, इससे बढकर कोई बात मेरे समझ में नहीं आती। प्रभु से प्रेम कैसे हो? यह उत्तर मिलता है कि प्रेम किसी से भी करना हो तो सेवा करने से, अनुकूल बनने से प्रेम होता है। अनुकूल में सबका प्रेम होता है। मन के अनुकूल में प्रेम एवं प्रतिकूल में द्वेष होता है। प्रभु के हम तभी अनुकूल बन सकते हैं जब प्रेम हो। अब प्रश्न उठता है, प्रेम कैसे करें? क्या उपाय है? उपाय यह है कि सब प्रभु का ही स्वरूप है -

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।।

(गीता 10/20)

हे अर्जुन! मैं सब भूतों के हृदय में स्थित आत्मा हूँ तथा संपूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ।

यह भी कहा है -

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।

(गीता 18/46)

जिस परमेश्वर से संपूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत व्याप्त है, उस परमेश्वर की अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

जिस परमात्मा से सारा संसार प्रकट हुआ है, जिससे यह संसार व्याप्त है उसकी सेवा-पूजा करें। पूजा करना क्या है? आधेश्लोक में विधि बतलाई है कि सबकी पूजा, सत्कार और सेवा करे, आधे श्लोक में भगवान का तत्त्व बतलाया है।

ईशावास्योपनिषद् में कहा है-'ईशावास्यमिदं सर्वं' समस्त संसार ईश्वर से व्याप्त है। कहने का अभिप्राय, वह परमात्मा जो सारे संसार को उत्पन्न करने वाला है, उसकी सेवा करें, सबके अनुकूल बन जाएँ, अनुकूल बनना ही सेवा है।

सार बात यह है कि जितने प्रेमी हैं, घर वाले हैं, उन पर कोई संकट का काम प्राप्त हो वहाँ सबके हित के लिये अपना नम्बर पहला रखो। अपनी बलि देने से सबका हित हो जाए तो तैयार हो जाएँ। यदि एक मोहल्ला, कुटुम्ब भी बच गया तो भी अपनी बलि देने के लिये तैयार हो जाएँ। यदि एक व्यक्ति के लिये भी आवश्यकता पड़े तो उसके लिये अपने प्राण-त्याग के लिये तैयार रहे, यह बड़ा उत्तम भाव है। किसी प्रदेश की बात है, वहाँ सरकार ने सूचना प्रकाशित की कि देश की रक्षा के लिये जो प्राण देने को तैयार हो वह आये। आवश्यकता से अधिक व्यक्ति आ गए। एक लड़के ने पत्र लिखकर भेजा कि मेरे घर में बूढी माता है, उसकी सेवा के लिये मुझे बाध्य होकर रहना पड़ता है। उसकी माता को पता लगने पर एक पत्र लिखकर रख गई कि देश की रक्षा के लिये मैं आत्महत्या कर रही हूँ, मेरे मर जाने से मेरा लड़का देश की रक्षा के लिये जा सकेगा। देश की रक्षा के लिये कितना उत्तम भाव है।

हमारे लिये सारा देश अपना है, सबकी रक्षा हो, यही भाव रखना चाहिए। न देश का अभिमान न जाति का अभिमान रहे। मनुष्य में बहुत प्रकार के अभिमान रहते हैं। हम लोगों में कितने प्रकार के अभिभाव हैं? वर्ण, विद्या, कुटुम्ब, देश, जाति का अभिमान। इसी प्रकार अन्य किसी भी प्रकार का अभिमान है, वह पतन करने वाला है। सभी प्रकार के अभिमान का त्याग करें।

ज्ञान के सिद्धान्त से सब हमारी आत्मा है, भक्ति के सिद्धान्त से सब हमारे पूज्य हैं। भगवान कहते हैं-

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।

गीता (6/30)

जो पुरुष संपूर्ण भूतों में सबके आत्मरूप मुझे वासुदेव को ही व्यापक देखता है और संपूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दु:खं स योगी परमो मत:।।

(गीता 6/32)

हे अर्जुन! जो योगी अपने भाँति संपूर्ण भूतों में सम देखता है और सुख अथवा दुख को भी सब में सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।

भक्ति के सिद्धान्त में दो मत हैं-एक तो सबको अपना इष्ट समझना, दूसरा सबको बन्धु समझना। कहा गया है-

माता च कमला देवी पिता देवो जनार्दन।
बान्धवा विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्।।

दूसरी बात है,

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।।

तीन बातें हैं,-या तो सबको आत्मा समझकर सेवा करे, या सबको परस्पर भाई समझकर सेवा करे, या सबको नारायण समझकर सेवा करे, तीनों ही उत्तम हैं। सर्व साधारण के लिये भक्ति की बात सुगम है। भक्ति में दो बातें आती हैं,-सब हमारे भाई हैं, इसकी अपेक्षा सब परमेश्वर हैं-यह सिद्धान्त ऊँचा है। ईसाइयों में इस बात का ज्यादा प्रचार है कि सब हमारे भाई हैं, ज्ञान के सिद्धान्त से सब आत्मा हैं।

जिसको हम अपना भाई समझते हैं, आपत्ति पड़ने पर उसका भी त्याग कर देते हैं, किन्तु आत्मा का अनिष्ट नहीं चाहते। भाई से बढकर अपने आप से प्रेम है। जैसी सेवा अपनी बनती है वैसी सेवा सहोदर भाई की भी नहीं बनती। इससे सिद्ध हुआ कि सबको भाई समझने की अपेक्षा सबको अपनी आत्मा समझना ऊँचा सिद्धान्त है। इससे भी ऊँची बात है, सबको अथवा इष्टदेव समझे, यह उत्तम भक्ति है। इष्ट के लिये मनुष्य अपने आपको भी अर्पण कर देता है।, इष्ट के प्रति जितनी सेवा बन सकती है, उतनी किसी के लिये नहीं बन सकती। उसमें प्रतिकूल बुद्धि होती ही नहीं, प्रतिकूल हो जाए तो इष्ट नहीं। इससे यह बात सिद्ध होती है कि भाई से भी बढ़कर अपने आपसे प्रेम है, उससे भी बढकर अपना इष्ट प्रिय है, यदि इष्ट प्रिय नहीं है तो इष्ट-बुद्धि नहीं है।

मनुष्य अपने प्राणों से भी बढकर जब अपने प्रियतम को समझता है, तभी वे प्रकट हो जाते हैं। इस बात को समझाने के लिये यह श्लोक है -

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव।।

सब बात इसमें नहीं आई, एक अंश मात्र आई है, अंत में यही कहा कि आप सर्वस्व हैं।

इससे यह बात हुई कि सबसे बढकर भगवान में प्रेम करना है। सबकी सेवा ही भगवान की सेवा है। यावन्मात्र को अपना इष्टदेव मानकर उनकी सेवा ही परम सेवा है। कैसा भाव होना चाहिए? जैसा नामदेव जी का था। कुत्ता रोटी लेकर भागा, नामदेव जी घी का कटोरा लेकर पीछे दौड़े, बोले-महाराज! रोटी लूखी है, घी चुपड़वालो, कुत्ते के रूप में भगवान प्रकट हो गये। कैसा उत्तम भाव है। गीता में भगवान ने कहा है -

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोक महेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।

(गीता 5/29)

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपों का भोगने वाला, संपूर्ण लोकों के ईश्वरों का भी ईश्वर तथा संपूर्ण भूत-प्राणियों का सुहृद् अर्थात् स्वार्थ रहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्व से जानकर शान्ति प्राप्त होता है।

यदि यह बात समझ में आ जाए तो अभी दर्शन हो जाए। यज्ञ-तपों का भोक्ता भगवान हैं। कैसे? भगवान ही

देव, मनुष्य, ऋषि, पशु के रूप में हमारे द्वारा दी गई वस्तुओं को ग्रहण करते हैं। हम जो यज्ञ, दान, तप करते हैं उसके भगवान ही भोक्ता हैं। कुत्ते को, कौओं को रोटी देते हैं, भगवान ही कुत्ते और कौओं के रूप में रोटी ले रहे हैं।

इस श्लोक में तीन बातें बताई गई हैं। इनमें से एक को जानने वाला भी भगवान को प्राप्त हो सकता है। तीनों को जानने वाला हो जाय, फिर तो बात ही क्या है?

यदि आप कहें कि हम भगवान को ऐसा समझ गये, किन्तु शान्ति नहीं मिली। आपके घर पर अतिथि आए, उनको भोजन कराते हुए क्या आप ऐसा समझते हैं कि भगवान को भोजन कराते हैं, यदि नहीं तब तो आपने उपरोक्त श्लोक का रहस्य समझा ही नहीं।

नामदेवजी कुत्ते को भी नारायण समझते थे, उनके घर में आग लग गई, आधा माल जल गया, वे प्रार्थना करने लगे-हे प्रभु! आपने आधे का ही भोग लगाया। आधे ने क्या अपराध किया है। बचा हुआ भी उसमें डाल दिया, वे आग में भगवान को देखते थे। अब भगवान उनसे कैसे छिपें। जैसे प्रहलाद से नहीं छिप सके। हिरण्यकशिपु ने उनसे पूछा-क्या खम्भे में भी तुम्हारा भगवान है? उन्होंने कहा हाँ। हिरण्यकशिपु ने खम्भे पर मुक्का मारा, खम्भ फाड़कर भगवान निकले और हिरण्यकशिपु को चीर डाला। प्रहलाद को विश्वास था कि खम्भे में भी भगवान हैं। प्रहलाद को अग्नि में डाल दिया, वे नहीं जले। पूछने पर कहा कि यह मुझे कैसे जलाये मैं तो प्रभु की गोद में बैठा हूँ। उसके ध्यान में था कि अग्नि साक्षात् नारायण हैं तो नारायण कैसे जलायें।

हम किसी की सेवा करते भी हैं तो ऐसा भाव नहीं होता कि हम भगवान की ही सेवा कर रहे हैं, श्रद्धा की कमी है इसीलिये भगवान प्रकट नहीं होते। पशु-पक्षी किसी की भी सेवा करे, भगवान समझ कर करे। जो आनन्द भगवान के दर्शन से हो, वही आनन्द उनके दर्शन से होना चाहिए। भगवान के मिलने में हमें विलम्ब हो रहा है, इसमें हमारी बेसमझी ही है, इसके लिये हमें कुछ करना नहीं पड़ता।

किसी के यहाँ अतिथि आ गए। एक तो ऐसा है भोजन कराता ही नहीं, दूसरा आदर से नहीं कराता तो बातें सुनाकर कराता है, तीसरा है उसने कहा-आप आ गए बड़ी अच्छी बात है। प्रेम-शान्ति से भोजन कराया। चौथा है उसने कहा-ये तो साक्षात् भगवान ही आ गए, इनकी सेवा करके लाभ उठाओ, सेवा करने लगा। पांचवां है देखकर ही मुग्ध हो गया, स्तुति करने लगा -

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहितन्मे शिष्यस्तेऽहंशाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।

(गीता 2/7)

इसलिए कायरतारूप दोष से उपहत हुए स्वभाव वाला तथा धर्म के विषय में मोहितचित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिए, क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसीलिये आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिये।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्।।

(गीता 10/12)

आप परम ब्रह्म, परम धाम और परम पवित्र हैं, क्योंकि आपको सब ऋषिगण सनातन, दिव्य पुरुष एवं देवों का भी आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं। आपने बड़ी दया की, उसने कहा भगवान ही आए हैं, आपने अपने रूप को क्यों छिपा रखा है।

सब समय यह भाव हो तो भगवान रुक नहीं सकते। खर्च, परिश्रम तो पाँचों में समान है फल में महान अन्तर है। केवल भाव का अन्तर है। भाव से कितना अन्तर पड़ जाता है। सब समय यह भाव हो तो भगवान रुक नहीं सकते।

प्रेम कैसे हो? प्रेम सेवा करने से हो सकता है। सभी परमेश्वर हैं, सब में परमेश्वर है, ऐसा समझकर प्रेम करे, सेवा करे। भारी से भारी संकट आकर प्राप्त हो तो पहले अपना नम्बर रखे। ऐसे महान पुरुष हमारे यहाँ हो गये हैं। महाराजा दिलीप की कथा प्रसिद्ध ही है। वे वशिष्ठ जी के पास गये। उन्हें वशिष्ठ जी ने नन्दिनी गौ की सेवा करने के लिये कहा, वे सेवा करने लगे। गौ ने एक दिन राजा की परीक्षा ली। वन में शेर आया और नन्दिनी पर

आक्रमण किया। राजा ने बाण चलाना चाहा, किन्तु हाथ स्तम्भित हो गये। राजा ने कहा गौ को मत मारिये, छोड़ दीजिए, बदले में मुझे खा लीजिए। शेर ने कहा यह तो पशु है, तुम मनुष्य को, बुद्धिमान हो, विचार कर देख लो तुम्हारे बचने से बहुत लाभ है। राजा ने कहा मैंने विचार कर लिया है, यदि मेरे प्राण जाकर भी इसके प्राण बच गये तो मेरे धर्म का पालन हो गया। मैं अपना धर्म पालन करना प्राणों से भी बढकर समझता हूँ। ऐसा कहकर अपने आपको सिंह के समर्पण करके वे ध्यान में मग्न हो गये, देखा वहाँ सिंह नहीं है, गाय ही थी। गाय ने कहा मैंने ही तुम्हारी परीक्षा ली थी, जाओ तुम्हें पुत्र की इच्छा थी, तुम्हारे पुत्र होगा। यदि वही राजा निष्काम भाव से सेवा करता तो भगवान की प्राप्ति हो जाती।

जो भगवान के लिये अपने आपको अर्पण कर देता है, भगवान उससे छिप नहीं सकते। किसी पर भी आपत्ति आ जाए तो अपने आपको न्यौछावर कर दे। यदि भगवान ही आकर घोषणा करें कि सब व्यक्तियों में किस को दर्शन दें तो कहना चाहिए कि मुझे छोड़कर सबको दर्शन दे दीजिये। यदि उत्तम चीज आकर प्राप्त हो तो सबसे पीछे अपना नम्बर रखे। जो बलिदान के लिये सबसे पहले अपना नम्बर और उत्तम वस्तु के लिये अपने साथी का नम्बर पहले रखता है वही पुरुष श्रेष्ठ है। एक कथा है-एक आदमी वैकुण्ठ जाने लगा। मार्ग में स्थान विशेष नरक आ गया। उसके वहाँ पहुँचने पर लोग चिल्लाने लगे-आप यहीं ठहर जाइये। यह कुंभीपाक नरक है, इसमें हम पापी जीवों को पकाया जाता है, आपके आने से यहाँ की अग्नि शान्त हो गई है, हम लोगों को शान्ति प्राप्त हो गई है, हम लोग जो काटे जा रहे थे, तलवार की धार कुन्द हो गई है, आपसे स्पर्श की हुई वायु लगने से हमें सुख मिल रहा है। उसने कहा मेरे रहने से इतने लोगों को सुख मिलता है, अत: अब मैं यहीं रहूंगा, वैकुण्ठ में क्या करूंगा। पार्षदों ने कहा-चलिए, उसने कहा मैं तो यहीं रहूंगा, यदि इन लोगों के लिये भी आपके यहाँ स्थान हो तो मैं भी चल सकता हूँ। भगवान को सूचना दी गई, भगवान ने कहा-सबको ले आओ। सबकी मुक्ति हो गई।

युधिष्ठिर की कथा आती है कि इन्द्र रथ लेकर आए, उन्होंने देखा कि एक कुत्ता उनके साथ आ रहा है। इन्द्र ने कहा तुम कुत्ता साथ में नहीं जा सकता है, कुत्ते को पालने वाला नरक में जाता है। युधिष्ठिर ने कहा-ठीक है यह मेरे साथ यहाँ तक आ गया है, अब इसको हिमालय में छोड़ जाऊँ तो कितना पाप है। मैं इसे छोड़कर नहीं जाना चाहता, यदि यह नहीं जा सकता है तो मुझे भी यहीं आनन्द है। एक कुत्ते के लिये स्वर्ग को लात मार देते हैं।

महाभारत की ही कथा है राजा युधिष्ठिर की कथा आती है कि इन्द्र रथ लेकर आए, उन्होंने देखा कि एक कुत्ता उनके साथ आ रहा है। इन्द्र ने कहा कुत्ता साथ में नहीं जा सकता है, कुत्ते को पालने वाला नरक में जाता है। युधिष्ठिर ने कहा-ठीक है यह मेरे साथ यहाँ तक आ गया है, अब इसको हिमालय में छोड़ जाऊँ तो कितना पाप है। मैं इसे छोड़कर नहीं जाना चाहता, यदि यह नहीं जा सकता है तो मुझे भी यहीं आनन्द है। एक कुत्ते के लिये स्वर्ग को लात मार देते हैं।

महाभारत की ही कथा है राजा युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ की प्रशंसा हो रही है। एक नेवला बिल से प्रकट हुआ कहा, झूठी प्रशंसा क्यों करते हो। इस यज्ञ से भी बढकर मैंने यज्ञ देखा है। एक व्यक्ति शिलोञ्छवृत्ति से जीवन निर्वाह करता था। कई दिनों तक अन्न नहीं मिला। सात दिन के बाद अन्न मिलने पर रोटी बनाई एवं उसके चार भाग किए। उनका नियम था भोजन के समय कोई अतिथि मिल जाए तो उसे भोजन कराकर भोजन करते थे। बाहर आकर देखा एक ब्राह्मण है। उससे पूछा भोजन करेंगे, ब्राह्मण तैयार हो गया। अपना एक हिस्सा उसे दे दिया, ब्राह्मण देवता की तृप्ति नहीं हुई। स्त्री ने कहा मेरे हिस्से का भी इसे दे दीजिए, वह देने के बाद भी क्षुधा नहीं मिटी, फिर पुत्र ने कहा मेरा भोजन भी इन्हें दे दें, आग्रह देखकर उसका हिस्सा भी दे दिया। पुत्रवधू ने भी अपना हिस्सा ब्राह्मण को दिला दिया। आखिर चारों का भोजन एक ही ब्राह्मण को दे दिया, अब ब्राह्मण ने कहा मेरी तृप्ति हो गई। वे तो साक्षात् धर्मराज ही थे, प्रकट हो

गये, कहा मैं आपकी परीक्षा के लिये आया था, आप ही धर्म का पालन करने वाले हैं, मेरे आसन पर आप ही बैठने के योग्य हैं, मैं अधिकारी नहीं हूँ। नेवले ने कहा जहाँ ब्राह्मण ने हाथ धोए थे, उस कीचड़ में लोटने से मेरा आधा शरीर स्वर्ण का हो गया। यहाँ लोटने पर उलटा कीचड़ लग गया है। दूसरों की सेवा करने के बाद यदि अन्न बचे तो खाले, वही यज्ञशिष्ट है।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।।

(गीता 3/13)

यज्ञ से बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से मुक्त हो जाते हैं और जो पापी लोग अपना शरीर-पोषण करने के लिये ही अन्न पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं।

सब उदाहरणों से दो बात मिली, बलिदान के काम में सबसे पहले स्वयं रहे, अपने लाभ के काम में सबसे पीछे रहे, इससे भगवान शीघ्र प्रकट हो जाते हैं। महाभारत आदि पर्व की कथा है-

महाराज युधिष्ठिर एक नगरी में रहते थे, वहाँ बकासुर नाम का एक राक्षस रहता था। उसकी शर्त थी कि मुझे प्रतिदिन एक गाड़ी अन्न तथा एक मनुष्य भोजन के लिये देना होगा, अन्यथा मैं सारे नगर को खा जाऊँगा। वहाँ प्रत्येक परिवार की पारी बाँध रखी थी, बारह वर्ष बाद एक घर की पारी आती थी। पाण्डव जिस ब्राह्मण के यहाँ ठहरे थे, उसकी पारी थी। उनके परिवार में पति, पत्नी, एक पुत्र एवं पुत्री थे। वे लोग आपस में चर्चा कर रहे थे कि कल राक्षस के पास मैं जाऊँगा, यही विचार-विमर्श चल रहा था। यह बात कुन्ती ने सुन ली। कुन्ती ने कहा कि मेरे पाँच लड़के हैं, उनमें से एक को भेज दूंगी। इतने में भीमसेन आ गए, कुन्ती ने कहा कि ब्राह्मण की रक्षा के लिये तुमको भेज रही हूँ। भीमसेन प्रसन्न हो गये। उनके भाइयों को मालूम होने पर युधिष्ठिर ने कहा-इसके बल पर तो हम राज्य लेना चाहते हैं, हम चारों में से किसी एक को भेज दीजिये। कुन्ती ने कहा-इसके लिये तो भीम ही ठीक है। वह राक्षस को मारकर आजाएगा और ब्राह्मण की भी रक्षा हो जाएगी, मुझे यह विश्वास है। युधिष्ठिर ने कहा-आपकी इच्छा। भीम को भेज दिया गया। भीमसेन भूखे थे, जो ले गये थे, खाने लगे। जो कुछ पाण्डव इकट्ठा करते थे, आधा भीम खाते थे, आधे में बाकी लोग भोजन करते थे, किन्तु उनका पेट नहीं भर पाता था। उनके भोजन करते समय ही राक्षस आ गया। राक्षस ने आकर उनकी पीठ में मुक्का मारा, किन्तु वे खाते ही रहे। आनन्द से भोजन करके हाथ धोए।

राक्षस ने कहा-मेरे लिये भोजन आया उसे तूने खा लिया। भीमसेन ने कहा कि अभी तक तुमने अनर्थ किया है, उसका बदला मैं आज लूंगा। उसकी चोटी पकड़ कर, घुमाकर एवं घसीट कर मार डाला तथा नगर के द्वार पर गिरा दिया। फिर ब्राह्मण के घर चले गये। प्रातःकाल सब लोगों ने देखा राक्षस मरा पड़ा है। यहाँ इतना ही सार लेना है कि उस माता को धन्यवाद देना चाहिए कि दूसरों की रक्षा के लिये अपने पुत्र को राक्षस के पास भेज दिया।

अपने तो यह बात लेनी है कि वह ब्राह्मण तो स्वयं जाने को कहता है, स्त्री, बच्चे स्वयं जाने के लिये कहते हैं। कुन्ती अपने पुत्र को भेजती है। ऐसे लोगों को भगवान नहीं मिलेंगे तो किसको मिलेंगे भारी से भारी कष्ट का काम पड़े तो पहले अपना नम्बर रखे, भोग का काम पड़े तो दूसरों को दे दे। यह भगवान में प्रेम बढाने का उपाय है। इसका फल अनन्य प्रेम होता है। दूसरी बात थी सर्वलोकमहेश्वर। यह मानने से कल्याण कैसे हो सकता है? जो उनको महान ईश्वर जानता है वह उनको ही भजता है।

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत।।

(गीता 15/19)

हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्व से पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वर को ही भजता है।

उदाहरण-एक राजा थे उनके तपेदिक हो गया, एक वैद्य आया उसने उनका इलाज कर दिया, उनका रोग ठीक

हो गया। राजा ने प्रसन्न होकर कहा कि हमारे राज्य में जो चीज आपको सबसे बढकर अच्छी लगे वह आप ले जा सकें तो ले जाएँ। पत्थर की खान, ताँबे की खान, कोयले की खान, रुपया, चाँदी, स्वर्ण हीरा आदि की खानें दिखाई गई, एक घंटे का समय दिया। बताइये क्या वह कोयला, लोह ढोवेगा। वह तो हीरा, जवाहरात ही ढोवेगा, यदि कोयला ढोता है तो मूर्ख है।

इसीलिए भगवान कहते हैं जो मुझे सबसे बढकर समझेगा, वह मुझे ही भजेगा। धन, मकान को नहीं भजेगा। जो मुझे पुरुषोत्तम समझता है वह मुझे ही भजता है। उससे मैं कभी अलग नहीं होता। तीसरी बात-

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।

मेरा भक्त मुझे संपूर्ण भूत प्राणियों का सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है।

जब आप यह जान पायेंगे कि प्रभु हेतु रहित प्रेम करने वाले हैं उनका कोई स्वार्थ नहीं है। भगवान के समान कोई सुहृद् नहीं है। जो मनुष्य भगवान को ऐसा जान जाता है वह शान्ति को प्राप्त हो जाता है। यदि शान्ति नहीं मिली तो उसने भगवान को जाना ही नहीं। यदि जानते तो तुम भी सुहृद् बनते। वे सुहृद हैं, यह जानने से आप समझते कि उनका हमारे सिर पर हाथ है, आपके आनन्द का ठिकाना नहीं रहता। मामूली राजा भी दयालु हो तो कोई दुखी नहीं रहता, फिर वह महान प्रभु राजाओं का राजा परम दयालु है। यह बात समझ में आ जाए तो कितनी शान्ति होनी चाहिए।

जो भगवान को अपना सुहृद समझ लेता है, उनको दयालु समझ लेता है, उसको कितना आनन्द होना चाहिए। हम लोग जब प्रभु को दयालु समझ जाएँगे तो हमारे दुख-चिन्ता सब भाग जाएंगे। भगवान ने गीता 5/29 में तीन बातें बतलाई हैं। एक-एक को धारण करने से शान्ति प्राप्त हो सकती है, तीनों को जान लेने पर तो आनन्द का पार ही न रहे।

यावन्मात्र जीवों को नारायण का रूप समझकर उनकी सेवा करे, वृक्ष को देखे तो देखे कि भगवान ने ही वृक्ष का रूप धारण किया है। इस प्रकार हम भगवान के तत्त्व को समझ जायेंगे तो भगवान के मिलने में विलम्ब नहीं होगा।

हमें त्याग फल उगाने दो!

- संग्रामसिंह सचियापुरा

कल का कुछ भरोसा नहीं माँ!
शक्तिमयी अलख जगाने दो।
तेरा त्यागी कण-कण कहता,
पुनः वेद मंत्र पढ़ाने दो।।

मानव जूणी क्यों शरमाये?
भक्ति की 'श्री' राग सुनाने दो।
हँसते हैं नहीं हँसाये,
उन्हें हँसा के जाने दो।।

फिर से बुझे हुए तन-मन में,
हमें त्याग फल उगाने दो।
जिन्हें अपनत्व का प्यार नहीं,
माँ, उन्हें 'संग्राम' शक्ति दो।।

विचारसरिता

(चतुर्थपञ्चाशत् लहरी)

- विचारक

करने से जो होगा वह टिकेगा नहीं। क्रिया द्वारा की गई कृति का स्थायित्व नहीं है। जो करने से होता हुआ दिखता है वह नहीं करनेसे मिट जाएगा। नहीं करना जिसे आ गया, अक्रियता जिसकी सिद्ध हो गई, उसी ने आत्मदर्शन पाया है। करने से संसार की सिद्धि होती है और नहीं करनेसे ब्रह्म की सिद्धि होती है। नहीं करने की सिद्धि के लिये उत्तम पात्रता की आवश्यकता है, और पात्रता के लिये आवश्यक है-अहंकार से मुक्ति। सभी प्रकार के बाह्य उपादानों से अपने को मुक्त कर देना ही उसकी पात्रता है।

शास्त्र, सद्ग्रन्थ व वेदों के अध्ययन से जो पाण्डित्य का अभिमान होता है वही अपात्रता है। बुद्धि में भरे हुए ज्ञान के बोझ से जो बोझिल पण्डित है वह सदैव रीता ही जाएगा, जिसकी बुद्धि में पहले से संसार भरा पड़ा है तो ब्रह्मज्ञान जैसी पवित्र बात वहाँ कैसे टिक सकती है। खाली पात्र को भरना आसान है पर भरे हुए को भरना असंभव है। ज्ञान के अहंकार से भरे हुए साधक को कभी भी आत्मोपलब्धि जैसी अनुभूति हो ही नहीं सकती। देहाध्यास से लेकर समस्त मिथ्या जगत के पदार्थों में निरासक्ति का भाव ही पात्रता है। सबसे पहले पात्रता का होना जरूरी है। पात्रता जिसने अर्जित कर ली वह आत्मज्ञान का अधिकारी साधक है। ऐसे अधिकारी शिष्य को जब सद्गुरु द्वारा उपदेशित ज्ञान श्रवण कराया जाता है तो वह उसे अपने हृदय में धारण करता है और तत्क्षण उसे अंधेरे में जलाए गए दीपकवत् प्रकाश की अनुभूति होती है और वह मोक्षपद में आरूढ़ हो जाता है।

साधक की पात्रता के लिये निम्न बाह्य उपादानों से अपने को मुक्त रखने की आवश्यकता है।

1. अहंकार से मुक्ति :- पद, प्रतिष्ठा व ज्ञान के अभिमान से व्यक्ति जब जकड़ जाता है तो उसी आवरण को वह उपलब्धि मान लेता है और अहंकार में जीने लगता है। उस अहंकार को ही अपना कवच बना लेता है और अपने से अतिरिक्त अन्यों को अपने से निम्न व हेय समझने लगता है। इस अहंकार से जब तक वह मुक्त नहीं होता है तब तक आत्मज्ञान जैसी उपलब्धि की आकांक्षा रखना ही मूर्खता है।

2. पूर्ण समर्पण :- अपने अहंकार को गलीभूत करके शिष्यभाव से अपने सद्गुरु के चरणों में सिर टिकाकर पूर्णरूप से समर्पित होना पात्रता का दूसरा मुख्य बिन्दु है। शरीर, मन, बुद्धि व इन्द्रियों के समूह सहित गुरु आज्ञा में जो तिरोहित कर देता है वही उत्तम अधिकारी कहा गया है।

3. सभी प्रकार के बाह्य उपादानों से मुक्ति :- सावयव रूप से अर्जित समस्त धन सम्पदा व भोग तथा ऐश्वर्य से उपराम होना साधक की तीसरी पात्रता है। पुत्रेषणा, वित्तेषणा व शास्त्रेषणा इन तीनों ईषणाओं से जो रहित हो गया है और स्वप्नकाल में भी अनित्य वस्तुओं के प्रति जिसका राग समाप्त हो गया हो और भीतर में जिसके रिक्तता आ गई हो ऐसे साधक को उपयोगी पात्र समझा गया है।

4. मुमुक्षता :- जनक और बुद्ध की तरह जिसे मोक्ष की चाह जगी हो और प्रभु प्रेम में जो दीवाना हो गया हो, ऐसे साधक को उपयोगी पात्र माना गया है। जल से रहित मीन के जीवन में जल के लिये जो छटपटाहट है वैसी ही स्थिति अपने आत्मदीदार की जिसे लग चुकी हो वह ज्ञानपिपासु साधक उत्तम पात्र की श्रेणी में आता है।

उपरोक्त लक्षणों वाले अधिकारी मुमुक्षु के ज्यों ही अहंकार का बंधन ढ़ीला पड़ता है, त्यों ही तत्क्षण आत्मा से संबंध जुड़ जाता है। इसमें मुख्य बाधक अहंकार था और वह गलीभूत होते ही मुक्त स्वरूप में स्थिति हो जाती है। जितनी देरी लगती है वह इन सबके प्रति धारणा बदलने में लगती है। यदि दृष्टि बदल गई तो सब कुछ

बदल जाता है। जो संसार से भरा है, अहंकार व वासना से भरा है वह रीता ही रह जाता है किन्तु जो संसार से रीता हो गया, शून्य हो गया वह आत्मज्ञान से स्वत: भर जाता है। वर्षा होती है तब गड्ढे भर जाते हैं और शिखर सूखे रह जाते हैं। यही आध्यात्मिक उपलब्धि का रहस्य है। इस रिक्तता की स्थिति में अष्टावक्र ने जनक के अन्त:करण में दस्तक दी और जनक को घोड़े के दूसरे पागड़े में पाँव रखने के पूर्व ही आत्मबोध हो गया। घटना एक क्षण में घट गई, वे उसी समय ध्यानस्थ होकर निर्विकल्प समाधि में पहुँच गए। घोड़े के दूसरे पागड़े पर पैर रखने की भी सुध न रही।

इससे यह सिद्ध होता है कि आत्मज्ञान कोई प्रक्रिया नहीं है बल्कि घटना है जो पात्रता होने पर किसी भी समय कहीं भी घट सकती है। सांख्य की मान्यता है कि आत्मा कहीं खोई नहीं है, वह तो उपलब्ध ही है। उसे पाना नहीं है, वह प्राप्त ही है। केवल विस्मृति हो गई है उसे पुन: स्मृति में लाना है। इसके लिये केवल आत्मबोध ही पर्याप्त है। आत्मोपलब्ध मनीषियों का कहना है कि क्रिया-मात्र बंधन है। अक्रिया ही मार्ग है। कुछ न करना ही सब कुछ करना है। अपने में रिक्तता कर देना ही पूर्णता है। कुछ न करके अपने को खाली मात्र कर देना ही भरने की विधि है। बुद्ध ने छ: वर्ष तक खूब किया तो कुछ भी हाथ नहीं लगा। अन्त में सब कुछ छोड़कर निरंजना नदी के किनारे लेट गए व शून्य की स्थिति में पहुँचे तो उसी क्षण उन्हें बुद्धत्व प्राप्त हो गया।

शंकराचार्यजी कहते हैं-''मोक्ष न योग से सिद्ध होता है और न सांख्य से, न कर्मों से और न विद्या से, वह केवल ब्रह्म और आत्मा की एकता के ज्ञान से ही सिद्ध होता है और किसी प्रकार नहीं।'' जे. कृष्णामूर्ति कहते हैं-'करके' संसार को प्राप्त किया जा सकता है किन्तु परमात्मा के लिये हम केवल 'रिक्तता' बना लें परमात्मा अपने आप उतर जाएगा। सांख्य की यह विधि हर साधक के लिये उपयुक्त नहीं है। प्रखर बुद्धि व तीव्र प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति ही इस विधि का उपयोग कर सकता है। सामान्य व्यक्ति को सांख्य समझने में कठिनाई आती है। वह क्रिया में विश्वास करता है अत: उसे क्रिया से गुजरना होगा। भक्त हृदय के लिये प्रेम ही मार्ग है। वहाँ योग, हठयोग या सांख्य काम नहीं करेगा। भिन्न-भिन्न स्तर के साधकों के लिये भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। रज्जबजी ने कहा-नगर और नारायण के रज्जव राह अनेक। भावे आओ किधर से आगे स्थल एक।।

पहुँचे पहुँचे एक मत, अन पहुँचे मत और।
सन्तदास घड़ी अरठ की, ढरे एक ही ठौर।।

मुमुक्षजनों के लिये आत्मैक्य बोद्ध ही सुगम मार्ग है। सरल और पूर्णता का मार्ग है। इसमें अपने आपको पाना है। दूसरे को पाने के लिये परिश्रम करना पड़ता है। कई प्रकार की विधियाँ अपनानी पड़ती है परन्तु अपने आपसे रूबरू होने में कोई विधि नहीं, बस उस ओर दृष्टिमात्र करनी है। जो हाजिरे हुजूर है उसे ढूंढ़ने या खोजने की आवश्यकता ही कहाँ है। संत कबीरजी ने कहा-रस्ते रस्ते दूर बहुत है, ऊजड़ पेड़ापैड़ी। कहत कबीर सुनो भाई साधो ऊपराड़े नैड़ी।।

आत्म विश्लेषण

हम जो कुछ करते हैं उसके असली कठोर रूप को मधुर शब्दों के जाल का प्रयोग कर अपनेसे ही छिपाते हैं, यदि हम सब बहाने-बाजियाँ छोड़ दें और अपने प्रति ईमानदार हो सकें तो हम शीघ्र ही यह जान पाएँगे कि बड़ी तेजी के साथ हम सच्चाई और स्पष्ट व्यवहार में अपनी निष्ठा खोते जा रहे हैं। जनमानस में बुराई की ओर ले जाने वाला एक गंभीर गुणात्मक परिवर्तन हो रहा है।

- डॉ. राधाकृष्णन

कोटड़े का प्राचीन ऐतिहासिक दुर्ग

- बाबूसिंह कोटड़ा

राजस्थान की वीर प्रसूता भूमि के कण-कण पर जैसे अनेकों गढ़, किले एवं दुर्ग विद्यमान हैं। जिनकी वीरोचित गौरव गाथाओं से आज भी राजस्थान का हर क्षेत्र शान से मस्तक ऊँचा किए हुए है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि यहाँ के रणबांकुरे शूरवीरों ने मातृभूमि की रक्षा करने के लिये हर प्रकार की कुर्बानी दी है। माँ की ममता, पिता का प्यार, पत्नी का सुख, पुत्र की ममता, परिजनों के स्नेह को त्याग कर राजस्थान के वीर सपूतों ने केवल जन्मभूमि की रक्षा करने के लिये त्याग व बलिदान की राह अपनाई। त्याग और बलिदान देने में राजस्थान के शूरमा युद्ध-भूमि में वीरता के प्रतीक थे तो अपने क्षेत्र में नव निर्माण करवाने के शिल्प प्रेमी भी थे। जिनके द्वारा निर्माण करवाये गये अनेकों ऐतिहासिक स्थल आज भी इनकी शिल्प कला कौशल के प्रतीक बने हुए हैं। राजस्थान के बाड़मेर जिले में भी गढ-किलों की भरमार है। बाड़मेर जिले में सिवाने का ऐतिहासिक दुर्ग, जूना का परकोटा, किराडु के खण्डहर, पुरातत्व महत्त्व के स्थल हैं।

बाड़मेर जिले में कोटड़े का ऐतिहासिक किला आज भी वीरों की शूरवीरता, शिल्पकला कौशलता का प्रतीक बना हुआ है। कोटड़े के किले पर अनेक आक्रमण हुए हैं, फिर भी वह आज भी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में अपने प्राचीन वैभव को संजोये हुये है। बाड़मेर नगर से लगभग 35 मील दूर शिव तहसील के कोटड़े ग्राम में, रेतीले भू-भाग में एक छोटी-सी पहाड़ी पर कलाकृतियों से अलंकृत एवं सुरक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक किला बना हुआ है। किले के चारों तरफ आठ बड़े-बड़े बुर्ज बने हुए हैं। इन बुर्जो के बीच-बीच में विशाल ऊँची-ऊँची दीवारों के मध्य में कई महल और मकानात बने हुए हैं। बुर्जो एवं बीच की दीवारों में दुश्मन से लोहा लेने के लिये मोर्चे भी बने हुए हैं। बुर्जो के मध्य भाग पर बने कई मकानों पर शिल्पकला उजागर करती कलाकृतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। ये प्राचीन कलाकृतियाँ अब धीरे-धीरे नष्ट हो रही हैं। समय-समय पर किले को नया रूप देने के लिये नव निर्माण होता रहा है। यह किला भारी चट्टानों को जोड़-तोड़ कर बनाया गया है। इसे जैसलमेर के विख्यात किले का आकार देने का कलाकारों ने अद्‌भुत प्रयास किया है। दंत कथाओं के अनुसार मान्यता है कि किले को यह रूप जैसलमेर के किले के शिल्पकार ने ही दिया है। उसने अपने दाहिने हाथ से यह कार्य किया। कहा जाता है कि जैसलमेर जैसा सुन्दर किला वह अन्यत्र न बना सके इसलिए उसका बायां हाथ काट दिया गया।

किले के स्वामित्व के सम्बन्ध में एक शिलालेख से प्रतीत होता है कि यह किला वि.सं. 1230 से 1239 तक की अवधि में आसलदेव के अधीन था। जिन्होंने किले की मरम्मत करवाने के साथ-साथ कई राज प्रसादों का भी निर्माण करवाया। इसके पश्चात् विभिन्न शासकों ने भी इस किले के नव निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्राचीन वैभव की ये इमारतें आज धराशायी हो चुकी हैं। यह किला आठवीं शताब्दी में परिहार या परमारों द्वारा निर्मित करवाया गया था। वि.सं. 814 के आसपास में भाटी देवराज ने इसमें तोड़-फोड़ की थी। दसवीं शताब्दी में आबू के परमार शासकों का इस किले पर अधिकार होने का उल्लेख मिलता है।

कोटड़े के किले में एक झरोखा है जिसको मेड़ी कहते हैं, जो अभी भी मुँह लटकाये जीर्ण-शीर्ण हालत में है। इसे राव जोधाजी के वंशज मारवाड़ के शासक मालदेव के खजान्ची गोरधन खींची ने बनाया था। ऐसा कहा जाता है कि ये कोटड़े के दानवीर राजा वागसिंह के वंशज ठाकुर गजसिंह की लड़की से शादी करने आये थे, लेकिन ससुराल के मकान का द्वार बहुत ही छोटा था जिसके अन्दर प्रवेश करते साफा अटक जाता था। जब श्री खींची ने प्रवेश किया तो उनका साफा दरवाजे में अटक गया

जिससे वे आवेश में आकर मकान के बारे में अपशब्द बोलने लगे। पास में खड़ी उनकी सालियों ने व्यंग्यात्मक रुख अपनाते हुए कहा कि यदि ऐसी कोई दिक्कत और परेशानी है तो किले पर नई मेड़ी बनाकर तोरण क्यों नहीं बाँधते। श्री खींची ने उस उलाहने के कारण नई मेड़ी का निर्माण करवाया और अलग से तोरण बांधा। आज भी यह मेड़ी विद्यमान है जिस पर सुन्दर कलाकृतियाँ बनी हुई हैं। यह किले के मध्य भाग में बनी हुई है जो किले की बुर्जो से ऊपर उठी होने के कारण मीलों दूर से आगन्तुकों को दृष्टिगोचर होती है।

पंवार आसलदेव के पश्चात इनकी तीन-चार पीढी ने कोटड़े का शासन संभाले रखा। बाद में मुसलमानों के आक्रमण ने कोटड़ा पंवारों से छीन लिया। चौदहवीं शताब्दी में खेड़ के राठौड़ रणधीर ने शिव को विजय करते हुए कोटड़ा पर अधिकार किया। राठौड़ रणधीर के पश्चात उनके भतीजे राठौड़ सौपा ने कोटड़ा पर शासन किया। सौपा के वंशजों में कोटड़ा के इतिहास प्रसिद्ध दानवीर राणा वागासिंह भी हुए। राणा वागसिंह के बाद में इनके भतीजे राणा रतनसिंह ने कोटड़ा का शासन संभाला। राणा वागसिंह के कोई संतान नहीं थी। राणा रतनतसिंह वागसिंह के भाई भाखरसिंह के पुत्र थे। रतनसिंह के पुत्र भैरूंदास व पृथ्वीराज भी बहुत पराक्रमी हुए। इनके पश्चात् इनके वंशजों में दुर्जनसिंह राठौड़ पराक्रमी राणा हुए थे जिन्होंने कोटड़ा के क्षेत्र को खेड़ तक विस्तृत किया। कहा जाता है कि दुर्जनसिंह की बहिन जैसलमेर दरबार को ब्याही हुई थी, को जैसलमेर दरबार द्वारा दुख देने पर दुर्जनसिंह ने जैसलमेर पर हमला बोलकर जैसलमेर को लूटा था जिसके विषय में दोहे आज भी चर्चित हैं। दुर्जनसिंह का एक हाथ युद्ध में कट गया। देवी ने वरदान दिया था कि अगर उनका एक हाथ युद्ध में कट जाए तो संसार का कोई भी दो भुजा वाला उनके सामने लड़ नहीं सकेगा। दुर्जनसिंह के पश्चात ठाकुर गजसिंह भी पराक्रमी हुए। आज भी यहाँ के राठौड़ कोटड़िया राठौड़ों के नाम से विख्यात हैं।

कोटड़े का किला मारवाड़ के नव-कोटों में से एक था। मंडोवर, आबू, जालोर, बाड़मेर, परकरो, जैसलमेर, कोटड़ा, अजमेर एवं मारु नवकोट हैं जिनमें कोटड़ा की गिनती है।

कोटड़े के इतिहास प्रसिद्ध किले में एक मीठे पानी का कुआ है जिसे सरगला के नाम से पुकारा जाता है। परमारों के शासनकाल में जब सकराई मुसलमानों ने इस पर आक्रमण किया, तब इस कुए में किसी ने विशाल पैमाने पर हींग मिला दी। जिसके कारण यह हींगिया कुए के नाम से अब भी विख्यात बना हुआ है।

कोटड़ा ग्राम जो पहले किले की छात्रछाया में बड़ा नगर था, जहाँ मन्दिरों और उपाश्रयों की भरमार थी, धीरे-धीरे उजड़ने लगा और आज पंचायत केन्द्र ही रह गया है। किला आज मात्र खण्डहर रूप रह गया है।

*

न बताओ अन्य को दोषी

जब एक अंगुली बढा कर आप,
किसी अन्य जन को बताते हैं दोषी।
तब तीन अंगुलियाँ स्वत: बढकर,
आप को ही बताती है दोषी।

न जलने वाली ज्वाला

क्रोध तो है ऐसी न जलने वाली ज्वाला,
जिसमें क्रोधी स्वयं सबसे पहले जलता।
जल-भुनकर राख हुई साख को देखकर,
पछताता हुआ क्रोधी केवल हाथ मलता।

– शम्भूसिंह राजावत 'अल्पज्ञ'

चित्रकथा-'लोकदेवता बाबा रामदेव जी'

चारों भाई-बहिन खेलते-कूदते बड़े हो रहे थे...
रामदेव! अब रहने दो, तुम्हारे हाथ दुखने लग जाएंगे !
बहिन के लिए भाई कभी थकता है भला ?... मुझे तो आपको झुलाते हुए खुशी हो रही है
अजमाल जी ने अपने गुरू बालीनाथ जी को बुलवाया...
गुरुदेव दोनों बालक आपको सौंप रहा हूं... शिक्षा, संस्कार और व्यक्तित्व निर्माण की जिम्मेदारी आप सम्भालें
निश्चिन्त रहें राजन ! इनकी शिक्षा व व्यक्तित्व निर्माण का समुचित प्रबंध मैं स्वयं करूंगा.
गुरू बालीनाथ नाथ सम्प्रदाय के सिद्ध संत थे... योग, तन्त्र व वैद्यकीय चिकित्सा एवं शस्त्र संचालन शिक्षा प्रारम्भ हो गई
रामदेव शीघ्र ही सभी विद्याओं में पारंगत हो गये
यह बालक अद्भुत प्रतिभा व शक्ति वाला है... सर्व गुण सम्पन्न
रामदेव तुम्हारी शिक्षा पूर्ण हुई... आगे के जीवन के बारे में क्या सोचते हो ?
चारों ओर ऊंच-नीच का भेदभाव समाज को तोड़ रहा है... और विधर्मी इसका लाभ उठा रहे... हिन्दुओं को बलात मुसलमान बनाया जा रहा है...
...मेरा जीवन ध्येय यहां के लोगों एवं उनके धर्म की रक्षा करना रहेगा

अपनी बात

मैं कैसा हूँ, अत्यन्त बिशुद्ध रूप में यह जानना आवश्यक है। मैं वास्तव में कैसा हूँ, क्या हूँ, यह जानने और स्वीकार किए बिना जीवन में परिवर्तन होना सम्भव नहीं होता। जो साधनारत है उसके लिये तो अपने आपको विशुद्ध रूप से जानना अत्यन्त ही आवश्यक है। साधना में अपनी बाधक वृत्तियों को छिपाने के लिये व्यक्ति जाने-अनजाने अनेक आवरण ओढ़े रहता है। इन आवरणों के नीचे मैं कैसा हूँ, असलियत क्या है, यदि यह पता चल जाए तो साधना में गति बनाए रखने वाला व्यक्ति परिवर्तित होने को कदम बढा लेता है, असम्भव है यह कि जो साधना के प्रति गंभीर है वह परिवर्तित हुए बिना रह जाए।

हम जहाँ-जहाँ गलत हैं, जो-जो हमारे भीतर व्यर्थ है, जो-जो हमारे भीतर अशुभ है, उसे-उसे छिपाने के लिये हम कई उपाय करते हैं, आवरण ओढ लेते हैं। अधार्मिक आदमी मंदिर जाएगा क्योंकि इससे धर्म ओढने की सुविधा हो जाती है। स्वयं के लिये भी यह भ्रम पैदा करना आसान हो जाता है कि मैं अधार्मिक कहाँ हूँ। मैं तो अधार्मिक नहीं। जो मंदिर नहीं जाते वे सब अधार्मिक हैं, मैं तो धार्मिक हूँ। यह भ्रांति उसके भीतर जो अधर्म था, उसे छिपाने का उपाय हो गया।

व्यक्ति का चित्त यदि सोचने में समर्थ होता तो उसे दिखाई पड़ेगा कि वह कहाँ है। हो सकता है कि उसकी यह असली मूर्ति जो दिखाई दे वह बहुत रुचिकर न हो। हो सकता है वह बहुत कष्ट कर हो। हो सकता है कि इतने दिनों का धोखा टूटे तो व्यक्ति घबरा जाए। लेकिन जीवन में निखार लाने वाले को इस पीड़ा से गुजरना ही पड़ेगा।

जिसको साधना को आगे बढाने के लिये स्वयं को नया जन्म देना हो, उसे प्रसव की पीड़ा झेलनी ही पड़ती है। पीड़ा से गुजरना ही होगा। अपने सारे ओढे हुए आवरण उतारकर, अपनी सब थोथी नैतिकता उतारकर देखना ही होगा कि मेरे भीतर क्या है? यदि आवरण उतरने पर भीतर अर्थात् वास्तविक रूप अत्यन्त कुरूप दिखाई पड़े तो जल्दी से नीति के आवरण ओढने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि उन आवरणों के कारण वह कुरूपता जिन्दा है, बची हुई है। अत: आवरण उतारना ही होगा यदि जीवन को साधना लीन बनाए रखना है। जैसे हैं, वैसे अपने को जानने को राजी हो जाना चाहिए। तब यह कुरूपता का सत्य ऐसी पीड़ा देगा कि हम अपने आपको बदलने को राजी हो जाएँ। अन्यथा आगे बढने का कोई मार्ग नहीं रह जाएगा।

यदि कोई साधना का राही यह जानले कि मैं अहंकारी हूँ, मैं व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा का रोगी हूँ, मैं असत्य भाषी हूँ, आदि-आदि तो बहुत दिनों तक वह वैसा ही नहीं रह पाएगा। साधना पर बढने वाले के लिये यह सम्भव नहीं कि वह अपनी इन बीमारियों का उपचार न करे। कोई व्यक्ति बीमारियों के साथ नहीं रह सकता। पता चल जाए कि मैं बीमार हूँ तो उपचार की चिन्ता प्रारम्भ हो जाती है। और साधना की बाधक बीमारियाँ तो शरीर की बीमारियों से कहीं गहरी मन को और प्राणों को स्पर्श करती हैं। अगर इनका बोध हो जाए तो उपचार की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाएगी। लेकिन मनुष्य को बोध नहीं हो पाता क्योंकि उसने बहुत-सी तरीकबें लगा रखी हैं और उन तरकीबों से मन को बहला लेता है और बोध प्राप्त करने को उद्यत ही नहीं होता है। तब भीतर की बात भीतर पड़ी रह जाती है।

जब भी साधनारत व्यक्ति को यह बताया जाता है कि हमारे भीतर जो सत्य है, जो कुरूपता है, उसे देखने का प्रयास प्रारम्भ करें, तो व्यक्ति में घबराहट होती है। लेकिन जो इतना साहस करता है, अपनी भीतरी कुरूपता को देखने के लिये तैयार हो गया है, तो समझना चाहिए कि उसने पहला कदम तो परिवर्तन हेतु उठा ही लिया है। अब तक जिन मनुष्यों ने भी वास्तविक आचरण को पाया है, वे वे ही हैं, जिन्होंने अपने वास्तविक अनाचरण को देखा है। जो लोग परमात्मा तक ऊपर उठ सके हैं वे, वे

ही हैं जिन्होंने अपने भीतरी पशुत्व को पहचाना है। जिनको आकाश छूना है, उसे नरक तक अपनी जड़ों को खोज लेना चाहिए। जिसे ऊपर उठना हो उसे बहुत गहरे भीतर अपनी कुरूपता को उघाड़कर देख लेना चाहिए। इससे पहले कि हमको परमात्मा के दर्शन हों, हमें अपने स्वयं के पशुत्व का दर्शन करना ही होगा। जो हमारे भीतर मौजूद है, जो हमारा तथ्य है, उससे भागकर कहीं जा नहीं सकते। हम संघ साधना के पथिक हैं और संघ शिक्षण से स्वयं को बदलने की कोई कल्पना, कोई अभीप्सा जागी है तो जो भीतर है उसे स्पष्टतया देखें। अपनी सच्चाई से ठीक-ठीक परिचित होकर अनुकूल कदम बढावें।

*

पृष्ठ 8 का शेष

चलता रहे मेरा संघ

क्षत्रिय युवक संघ की बात समझ में आ सकती है। बात समझ में आ सकती है कि क्षत्रिय युवक संघ ईश्वरीय कार्य है। संघ हमको ईश्वर की ओर ले जा रहा है। बहुत लम्बे समय से ब्रह्म शान्त पड़े थे। लेकिन मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊँ, यह संकल्प जगा तो उन्होंने अपने आपको सृष्टि में प्रकट किया। तो हम ब्रह्म की ही संतान हैं। हम भगवान की ही संतान हैं। उसकी ही कृति हैं। हम क्रियेचर हैं, क्रियेटर कोई और है। उसका अभ्यास थोड़ा-थोड़ा क्षत्रिय युवक संघ में करवाया जाता है। उसकी अनुभूति तभी हो सकती है जब हम संघ को हमारे अन्दर प्रवेश करने दें। यहाँ के अनुशासन को, आत्मानुशासन को, यहाँ के कठिन परिश्रम को, उद्यमशीलता को अच्छी तरह से समझने का प्रयास करें। क्षत्रिय युवक संघ की शक्ति को, जो ईश्वरीय कार्य है, हमारे अन्दर काम करने दें। ईश्वर की सहायता के बिना ऐसा कुछ होना सम्भव नहीं और ईश्वर चाहता है सबकी मदद करना। कोई भी कार्य करने से पहले उस कार्य को विनयपूर्वक भगवान को अर्पित कर दें। तब यह कार्य हमारा नहीं भगवान का हो जाता है। तब हमारे समझ में आ जायेगा कि यह ईश्वरीय कार्य कैसे है। मेरे उठने में समाज का उठना है, मेरे उठने में राष्ट्र का उठना है, मेरे उठने में संपूर्ण मानवता का उठना है। सारा विकास मेरे से प्रारम्भ होता है। इस गम्भीरता को समझते हुए क्षत्रिय युवक संघ के इस ईश्वरीय कार्य को हमारे अन्दर प्रवेश पाने दें, कार्य करने दें, उसे खो न दें। आज के मंगल प्रभात में यह श्री क्षत्रिय युवक संघ का हम सभी के लिये मंगल संदेश है।

जय संघशक्ति!

पृष्ठ 15 का शेष

मेरी साधना

श्रेयस्कर है। संसार के सभी प्राणियों की जीवन रक्षा का उत्तरदायित्व भगवान ने क्षत्रिय को दिया है। और शक्ति के अभाव में रक्षा कैसे की जा सकती है? शक्ति की आराधना करने का भाव तब पैदा होता है जब हमें स्वयं को अपनी शक्तिहीनता का पता चलता है। आत्मज्ञान के अभाव में शक्ति की साधना का विचार भी नहीं आता है। शक्ति प्राप्ति के लिये त्याग और बलिदान प्रथम आवश्यकता है। त्याग घर का नहीं, भोग का; बलिदान देह का नहीं, अपने अहंकार का। हमारी पीड़ा-वेदना वंध्या नहीं होनी चाहिए। प्रसव की पीड़ा हो तो नूतन का निर्माण हो सकता है। पुण्यश्लोक श्री तनसिंहजी तथा 'मेरी साधना' के लेखक स्व. पू. आयुवानसिंहजी की वेदना नव निर्माण की ही थी। श्री क्षत्रिय युवक संघ के माध्यम से बनने वाले हमारे समाज भवन में हम नींव का पत्थर बनने को आगे आवें। अद्वितीय एवं अतुलनीय कार्यकर्ता बनकर अपने प्राप्त सामर्थ्य और योग्यता से गाँव-गाँव, घर-घर जाकर अपने सोये हुए बन्धुओं को जगावें। शंखनाद करें-'भेरी बोली जागो-जागो अब मत सोना भाई'। अपने त्याग, तप एवं प्रचण्ड पुरुषार्थ से प्रमाद को झकझोर के हटावें और नये युग में, नये भवन में निवास करने का प्रण लें।

मगर क्या हुआ उन्हें ढह गये किनारे
सभी के दिलों में पड़ी है दरारें
टूटी हैं तारें सो गये तराने
खड़े रहने को भी रहे न सहारे
नये सिरे से हमको घरौंदे बनाने
संसार में जीओ तो शान से, ठाठ से, खुमारी से
मुर्दा दिल स्वत्वहीन मुर्झाए हुए मन से क्यों जीओ।

(क्रमशः)

महाराणा प्रताप जयन्ती
पर हार्दिक शुभकामनाएं

विरेन्द्र सिंह तलावदा
Contractor
(M) 94143-96530

तुम देश भक्त, तुम दृढ प्रतिज्ञ,
तुम थे स्वतंत्रता सेनानी।
बलिवेदी पर सर्वस्व त्याग,
तुम थे यशस्वी बलिदानी।।

कम लागत में अधिक कमाये
RO प्लान्ट लगाएं

घरेलु एवं व्यवसायिक RO प्लान्ट, चिल्लर प्लान्ट, स्पेयर पार्टस, जार, केम्पर, फिल्टर, केमिकल, पम्प आदि हॉलसेल दर में उपलब्ध।

व्यापारिक पूछताछ हेतू सम्पर्क करें :-

अरविन्द एन्टरप्राईजेज
www.arvindenterprises.in
राय कॉलोनी रोड़, बाड़मेर (राज.)
ऑफिस : 7597501111, स्वरूपसिंह भाटी भाडली मो. 9462306565

Kheechee

Karan Singh Kheechee Indroka

(M) 9414494904
(M) 6376141721

वीर शिरोमणि मुकनदास खीची जयंती की हार्दिक शुभकामनाएं

Kheechee Traders
Mundra Circle, Jodhpur Road, Piparcity,
Rajasthan 342601, India

Kheechee Gases
KUM, Merta City-341 510 (Raj.)
Email : kheecheetraders@gmail.com

Oxygen, Nitrogen, Carbon-diOxide All Industrial Gases Supplies

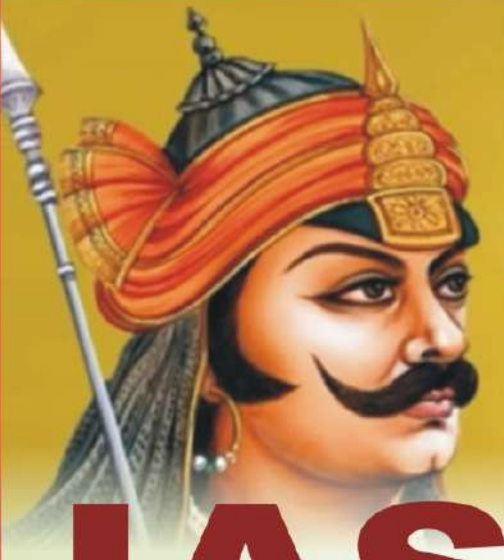

जन-जन में तुमने जगा दिये,
वे राष्ट्र भक्ति के अमिट भाव।
पर्वत पर्वत की खाक छान,
सह लिए हृदय पर अगिन घाव।।

महाराणा प्रताप जयन्ती
की हार्दिक शुभकामनाएं

IAS / RAS
तैयारी करने का राजस्थान का सर्वश्रेष्ठ संस्थान

स्प्रिंग बोर्ड
Spring Board

Springboard Academy, Main Riddi Siddi Choraha,
Opposite Bank of Baroda, Gopalpura, Bypass Jaipur
Website : www.springboardindia.org

मई-जून सन् 2020
वर्ष : 57, अंक : 05-06

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्...

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह